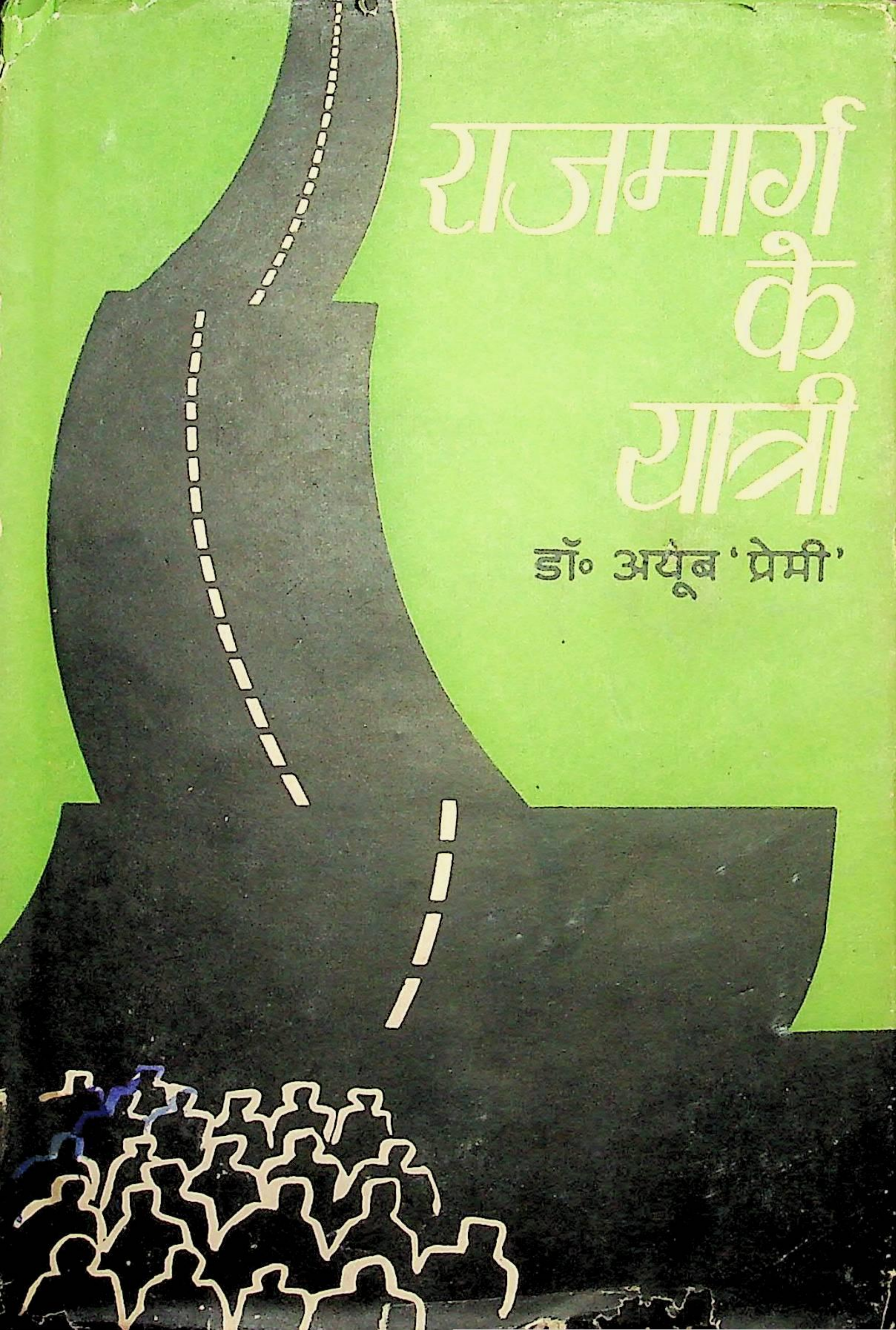
राजमार्ग के यात्री

डॉ० अयूब 'प्रेमी'



प्रियवर

डा० श्री रतनलाल शान्त जी

के लिए

सस्नेह

[illegible]

२ अक्तूबर १९८०

राजमार्ग के यात्री

(कहानियाँ)

राजमार्ग के यात्री

डॉ० अयूब 'प्रमी'

भारती भाषा प्रकाशन, दिल्ली-110032

प्रकाशक : भारती भाषा प्रकाशन
५१८/६ बी, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-११००३२

संस्करण : प्रथम, १९७८

मूल्य : नौ रुपये

मुद्रक : संजय प्रिंटिंग सर्विस द्वारा विकास आर्ट प्रिंटर्स
शाहदरा, दिल्ली-११००३२

कहानी क्रम

राजमार्ग के यात्री

(१४ कहानियाँ)

दोराहा या चौराहा ?

दूसरी श्रेणी के रेलवे डब्बे में बड़ी भीड़ थी। जैसे-तैसे कुली ने ऊपर की बर्थ पर एक तरफ सामान रखा। मैं कंधे पर शेरवानी डाले हुए तलाश करती हुई नज़र चारों तरफ फेंकने लगा कि कहीं थोड़ी-सी जगह प्रमिला के बैठने के लिए मिल जाय। एक बेंच पर बैठे जोड़े से मेरी नज़र ने बात की। तभी पुरुष के फैलकर बैठने के अन्दाज़ ने जवाब दे दिया —'जगह नहीं।'

—'जी, जगह तो बहुत है, हाँ, अलबत्ता आपके दिल में जगह नहीं है।'

इस जवाब को पाकर वे क्रोध के साथ घूरने लगे। लेकिन उनकी देवी जी को दया हो आई। उन्होंने अपने पति को कोने में बिठा दिया और अपने पास प्रमिला को बैठने के लिए जगह दे दी। अब शुक्रिया अदा करने के लिए मेरी नज़र जैसे ही उस दया की देवी से मिली कि कंधे पर पड़ी हुई शेरवानी नीचे डब्बे के फर्श पर गिर पड़ी। हाथ की किताब भी धूल चाटने लगी। मेरी इस बेहूदगी पर सारे डिब्बे ने कहकहा लगाया। प्रमिला ने फौरन शेरवानी को उठाकर अपनी गोदी में रख लिया और किताब की धूल झाड़ने लगी। वे पति महोदय अजीब-सी व्यग्य-भरी नज़रों से हम दोनों को देखते हुए मुस्करा रहे थे। उसी समय प्रमिला की सीट के ठीक पीछे एक सज्जन ने मुझे भी जगह दे दी। कुछ देर के बाद प्रमिला से देवीजी बातें करने लगीं—

—'आप कहाँ जा रही हैं ?' देवीजी ने पूछा।

—'श्रीनगर।' प्रमिला ने ज़वाब दिया।

—'हम भी कश्मीर जा रहे हैं—हनीमून मनाने के लिए। अभी कुछ. दिन पहले ही हमारी शादी हुई है। आपके पति वहाँ क्या करते हैं ?'

—'रेडियो स्टेशन में कलाकार हैं ।' प्रमिला ने जवाब दिया ।

—'मेरे पति तो बहुत बड़े रईस हैं । शिमला और मंसूरी में उनकी आलीशान कोठियाँ हैं । वहाँ तो ज़िन्दगी भर ऐश करना ही है, सोचा कि कश्मीर में ही हनीमून मनाया जाय ।'

मैंने देखा कि उनके पति महोदय जो कुछ देर पहले अपनी पत्नी पर झुँझला रहे थे, अब बड़ी रौब की मुद्रा में सँभलते हुए अकड़कर बैठ गए । उन्होंने उसी पोज़ में 'लाइफ' मैगज़ीन उठाई और बड़े मनोयोग के साथ पढ़ने लगे ।

—'यह कौन-सी किताब आपके हाथ में है ?' देवीजी ने फिर सवालों में ही बातें शुरू कीं ।

—'कविता की पुस्तक है ।' प्रमिला ने जवाब दिया !

—'मुझे कविता से उतनी ही चिढ़ है जितनी किसी कवि से । कवि लोग बिलकुल मूर्ख होते हैं । सिर्फ कल्पना की बातें करते हैं । इन लोगों का कोई भरोसा नहीं । कब क्या कर बैठें । वैसे मैं भी बहुत पहले कवियों को स्वर्ग का फरिश्ता समझती थी । लेकिन समझदारी आयी तो मैंने उसको एक बुद्धू से ज्यादा अहमियत नहीं दी । लेकिन मैंने अपनी शादी एक खिलाड़ी से की है । मेरे पति मिस्टर तपेश गाल्फ के बहुत मशहूर खिलाड़ी हैं ।'

मैंने देखा कि मिस्टर तपेश की आँखों में एक विशेष चमक आ गई थी । उनके चेहरे से रौब मानो टपक रहा हो । वे और तनिक अकड़ के साथ बैठ गए ।

—'हाँ, बहन, माफ कीजिए, आपके पति कवि तो नहीं हैं ?'

—'हाँ, वे मशहूर कवि हैं और कवि होना कोई गुनाह नहीं । वे मेरे लिए देवता हैं । मैं उनके बारे में कुछ भी कहा जाना बर्दाश्त नहीं कर सकती ।' प्रमिला के इस जवाब में स्वाभिमान और झुँझलाहट साथ ज़ाहिर हो रही थी ।

—'बहन, मेरा मतलब तुम्हारी भावना पर चोट करना नहीं है । मैं तो भगवान् से प्रार्थना करती हूँ कि मेरी जैसी खुशियाँ सभी को मिलें । कोई भी भोली-भाली युवती कवि को अपना कह सकती है लेकिन उस पर

विश्वास करना कैसी भयंकर बात है। वह किसी पर क्रोध करता है तो डर लगता है लेकिन जब ज़्यादा प्यार करे तब तो और भी ज़्यादा डर लगना चाहिए। दो दिलों के मधुर बन्धन से दामन को बाँधने के बाद उसका प्यार दहकता हुआ अंगारा बन जाता है। सच-सच बताना, क्या तुमने कभी ऐसा डर महसूस किया है ?'

—'नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं। मुझे कभी भी उनसे डर नहीं लगा।' प्रमिला ने सरल भाव से जवाब दिया।

—'हो सकता है, क्योंकि सभी के विचारों और भावों की दिशाएँ समान नहीं हुआ करतीं। मेरे पति तो स्वस्थ दृष्टिकोण के कायल हैं। हम दोनों के विचार बिलकुल एक-जैसे हैं। ऐसा संयोग बहुत कम देखने में मिलता है। तुम शायद सादा जीवन की कायल हो। लेकिन मैं तो इस जीवन को जितने सुख के साथ भोग सकूँ तो अपना सौभाग्य समझूँ। देखो, यह नेकलेस मेरे पति ने दस हज़ार में बनवाया है। ज़ेवरों के दस सैट हैं। सुबह से शाम तक कई बार कपड़े बदलती हूँ। हम दोनों के दर्जनों दोस्त हैं। उनके साथ सिनेमा देखती हूँ। सैर-सपाटे और पिकनिक मनाने के प्रोग्राम बना करते हैं। क्लबों में महफिलें सजती हैं। अरे ! तुम्हारे गले में सिर्फ बेला के फूलों का हार है ? कहाँ से खरीदा ?' मैंने देखा मिस्टर तपेश के चेहरे पर व्यंग्य-भरी मुस्कान नाच रही थी।

—'खरीदा कहीं से नहीं।' प्रमिला ने मुफलिसी के स्वर में कहा।

—'तो क्या तुमने खुद गूँथा है ? बड़ा अच्छा हार बनाती हो।'

—'नहीं, मैंने नहीं बनाया।'

—'तो फिर किसने ?'

—'मेरे पति ने।'

—'सच ?'

—'हाँ।'

—'ज़रा मुझे तो दिखाइए।'

—'लीजिए।'

—'बड़ा सुन्दर है। क्या सुबह के चार बजे इसे गूँथा गया है ?'

—'जी, लेकिन आप कैसे जानती हैं ?'

—'यूँ ही, क्योंकि ऐसे हार को गूँथने का यही समय होता है। जब तुम अगड़ाई लेकर करवटें बदलती होगी तब सहसा ही इसका महकता हुआ शीतल स्पर्श तुम्हें जगा देता होगा। अच्छा, आपके पति का कविता लिखने का क्या समय होता है ?'

—'यही लगभग एक बजे रात का। मैं तो अकसर सो जाया करती हूँ। कभी बीच में आँख खुलती है तो ये टेबुल लैम्प के प्रकाश में गुनगुनाते दिखायी देते हैं। मैं पूछती हूँ—क्या चोरी कर रहे हो ?'

—'तो क्या जवाब देते हैं ?' बड़ी बेसब्री के साथ देवी जी ने पूछा।

—'यही कि मेरे रूप की चोरी और फिर मेरे बालों से खेलने लगते हैं। बड़े चालाक हैं। थोड़ी देर में फिर सुला देते हैं। फिर तभी जागती हूँ जब बेला के इस हार से सुबह महक जाती है।'

—'कभी इनके भावों और विचारों में किसी ऐसे तूफान को मचलते हुए देखा है जिस पर ये अधिकार न कर पाते हों।'

—'हाँ कई बार ! मैं चौंक गई हूँ। और मैंने जब पूछा तो जवाब मिला कि दुःस्वप्न देखा था।'

—'बस यही तो चोरी है उनकी। अच्छा, सपने की हालत में किसी लड़की का नाम बडबड़ाते सुना है ?'

—'नहीं, कभी नहीं। वे इन चीज़ों से बहुत उठे हुए हैं।' प्रमिला ने हँसते हुए जवाब दिया।

—'तब बहुत अच्छा है। क्या आपके पति ने दिल्ली में शिक्षा पायी है ?"

—'जी हाँ।'

—'अंग्रजी साहित्य में फर्स्ट डिविजन पास हुए थे ?'

'जी !'

—'क्लास में बाईं ओर की बैंच पर बैठा करते थे ?'

—'मुझे नहीं मालूम।'

—'अच्छा, लालक़िले में हिन्दी कवि-सम्मेलन में जो भाग लिया था ?"

—'लिया होगा।'

— 'हाँ, लिया था और वहाँ इनकी कविता बहुत पसन्द की गई थी। कवि सम्मेलन के बाद लड़कियों ने घेर लिया था इन्हें। बेचारी रीता जी

भीड़ को चीर कर दौड़ी थी। क्या ये उन लड़कियों की भीड़ को चीरकर रीता तक नहीं जा सकते थे ? दाँत भींच कर अन्दर से सुलगती रह गई थी बेचारी। क्या तुम रीता माथुर को जानती हो ?'

—'कौन रीता ?' प्रमिला ने क्रोध के स्वर में कहा।

—'रीता जिससे ये प्यार करते थे। तुमसे भी ज्यादा।'

—'यह झूठ है। उन्होंने कभी भी मेरे अलावा किसी से प्यार नहीं किया। मुझे मेरा हार वापस कीजिए।' आवेश के साथ प्रमिला चीख पड़ी।

—'नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। इस पर मेरा अधिकार है। मैंने देखा कि दुगने आवेश में रीता चीख रही थी।'

—'रीता, यह क्या, नानसेंस ?' तपेश ने तिलमिलाते हुए कहा।

—'मिस्टर तपेश, आप ख़ामोश रहिए। मैं काबू से बाहर हूँ। चलती हुई गाड़ी से कूद पड़ूँगी।'

सहसा गाड़ी जालन्धर स्टेशन पर रुकी। मैं हक्का-बक्का देख रहा था। रीता ने मेरे सामने आकर उस हार के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। फिर तपेश से रोते हुए कहा— डीयर तपेश, मुझे माफ कर दो। अब हम कश्मीर नहीं जायेंगे। शिमला चलेंगे।' वह सामान प्लेट-फार्म पर फेंकने लगी। तपेश झुंझलाता हुआ उसका हाथ पकड़े हुए प्लेटफार्म पर उत्तर गया। जाने क्या हो गया। मैं प्रमिला का विना ध्यान किए हुए खिड़की की ओर बढ़ गया। गाड़ी चल पड़ी थी। खिड़की में खड़ा हुआ मुझे देखकर रीता चिल्ला रही थी—'डीयर अरुण ! ज़ंजीर खींचो मैं भी कश्मीर चलूँगी।' मुझे ऐसा लगा कि मैं एक दुराहे पर खड़ा मुसाफिर हूँ, चौराहे पर पड़ा हुआ और जब होश आया तो मालूम हुआ कि मैं चौराहे पर पड़ा हुआ हूँ जहाँ बहुत पूर्व ही अचेत हो गया था।

वह क्षण नहीं आया

युवक-युवतियाँ जब निकट सम्पर्क में आते हैं तो उनके शरीर और मन में एक स्वाभाविक कोशिश होती है जिसे हम दुर्बलता भी कह सकते हैं। रेखा उसकी सहपाठिन थी। उसने प्राय: युवकों को अपनी सुन्दर अंजलियों में उदासी भर-भर कर बाँटी थी। हाँ, एक आनन्द ही ऐसा भाग्यशाली था जिसे मुट्ठी भर धूप का उजास भेंट किया था। जब वह वरदान उसे मिला था तो उसने रेखा की मुस्कान में गुलाब की ओस भीगी पंखुड़ी हिलती हुई महसूस की थी। उन्हीं दिनों कालेज में 'आषाढ़ का एक दिन' खेलने का निश्चय किया गया था। बातों-ही-बातों में आनन्द ने रेखा से कहा था —'रेखा, तुम हीरोइन की भूमिका ले लो।'

—'और तुम ?'

—'मैं कालिदास की भूमिका ले लूंगा।'

—'तब तो बड़ा मज़ा आयेगा।'

एक क्षण के लिए रेखा की रुपहली हँसी से वातावरण में उजास मुखरित हुआ।

—'तब चलो न आज से ही रिहर्सल करते हैं।'

—'आज से ही ?'

—'क्यों ? क्या आज तुम्हें फुर्सत नहीं है ?'

—'नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं।'

दूसरे क्षण रेखा मौन रही। खामोशी का दर्पण सामने हो, जिसमें एक देवता की अधूरी तस्वीर का अक्स उभर कर ओझल हो गया हो ; कुछ वैसे ही आनन्द ने उसके चेहरे पर अस्पष्टता का रंग फैलते हुए देखा। जैसे वह सोच रही थी —लोग उसके पीछे क्यों पड़ते हैं ? उससे मिलने का आग्रह क्यों करते हैं ? शायद वह सुन्दर और रूपवती है। रूप के लालची

लोगों से उसे घृणा होने लगती। शायद वह किसी कवि की दर्द-धोयी कामना बनना चाहती थी। कालिदास तो उसका प्रिय कवि था। काश वह कालिदास की प्रेमिका होती। लेकिन कहाँ आनन्द और कहाँ कालिदास ! क्या वह उसे कालिदास बना सकती है ? क्या वह उसमें वैसा ही सौन्दर्य-बोध जगा सकती है ?

—'तुम क्या सोचने लगीं ?'

—'कुछ नहीं, कुछ भी तो नहीं।'

—'फिर भी तो ?'

—'यही कि अभी नहीं।'

—'क्यों ?···क्या हो गया है तुम्हें ?'

—'आनन्द, अभी न तो तुम कालिदास की भूमिका निभा सकोगे और न मैं हीरोइन की। इसके लिए साधना चाहिए बड़ी साधना। दूसरे आज मेरी तबीयत ठीक नहीं है। कल तुमसे इस सम्बन्ध में बातें करूँगी।'

—'कल जमुना के किनारे, उस टीले पर। चार बजे शाम को।'

—'हाँ, ज़रूर आऊँगी।'

—'अगर नहीं आईं तो मुझे मर्मान्तक दुःख होगा। समझीं ?'

—'अच्छा, भई समझी।'

दूसरे दिन आनन्द ठीक चार बजे पहुँचा। रेखा नहीं थी। उसने सोचा रेखा दर्पण के सामने खड़ी होगी। उसके इर्द-गिर्द साड़ियाँ बिखरी पड़ी होंगी। फिर रेखा एक के बाद दूसरी साड़ी बदलती गई। मेकअप करके चेहरे को दर्पण में विभिन्न कोणों से घुमा-घुमा कर देखा। अब वह चलने को ही थी कि शीला आ गई।

उसे दूर तक कोई नहीं दिखाई दिया। वह देर तक ऊँचे-ऊँचे वृक्षों की चोटी पर लरजती धूप को देखता रहा। फिर उसने डूबते सूरज को टापुओं के पीछे फिसलते हुए देखा। रेखा नहीं आई। वह बड़ी देर तक अँधेरे के थर्राने की आवाज़ सुनता रहा लेकिन रेखा नहीं आई।

तब उसकी आँखों के सामने कल्पना का दृश्य ही सत्य बना था। ······हाँ तो फिर शीला ने सजधज कर तैयार सहेली को नीचे से ऊपर

तक देखा और पूछा होगा—'कहाँ जा रही हो दुल्हन बनकर ! किस पर बिजली गिराने चली हो ।' उसी क्षण वे एक-दूसरे के आलिंगन पाश में हँसती बंध गईं । उसे महसूस हुआ कि रेखा ने सारी बात खोल दी होगी ।

—'शीला, यह बताओ, आनन्द इतनी लड़कियों के होते हुए भी मुझे ही क्यों चाहता है ?'

—'यही तो दुर्भाग्य है ?' शीला ने कहा ।

—'किस का ?'

—'अरे ! मेरा और किसका ?'

—'हट पगली । क्या तू सचमुच जलने लगी है ?'

—'जलें हमारे दुश्मन । हम तुम दोनों एक साथ रहती हैं । एक साथ पढ़ती हैं । एक साथ खेलती हैं, तो क्या एक साथ प्यार का फल भोग नहीं सकतीं ?'

—'तू तो बहुत उदार बन गई है । लेकिन क्या आनन्द मान जायेगा ?'

—'हाँ, सचमुच मान जायगा, क्योंकि जब भी हम दोनों साथ होती हैं तो वह जानबूझ कर हमारे सामने आ जाता है लेकिन बातें नहीं करता । सिर्फ देखता रहता है, कभी मेरी तरफ कभी तेरी तरफ । लेकिन जब तुम कालेज नहीं जातीं तो मेरे पास आकर तेरे बारे में पूछता है और ढेर-सारी बातें करता है ।'

—'तू सच कह रही है या मजाक कर रही है ?'

—'तेरी कसम, सच कह रही हूँ ।'

अच्छा ! तो यही कारण है कि रेखा नहीं आई । रात उतर कर गहराने लगी । वह सन्नाटे का अहसास करने लगा । उसे लगा कि शहर की रात जो जगमगाया करती थी अब फिर कभी नहीं जगमगायेगी । सुबह की किरणें उसकी खिड़की में से उतर कर तकियों पर सुनहरी रेखा नहीं खींचेंगी। उसे वह दिन याद आया जब शाम को रेखा के साथ-साथ एकदम सटा हुआ बातें करता इसी खामोश सड़क पर चला जा रहा था । उस समय कितने ही अजनबी शहरों में घूमने की कामनायें जाग उठी थीं लेकिन आज के संदर्भ में वह दृश्य एक हलका-सा यथार्थ बनकर

मर गया । जमुना की घाटी का वह दृश्य भी एक क्षण के लिए नज़रों में थिरकने लगा जब भावावेश में रेखा ने कहा था—

—'मैं तेरे लिए, तेरी महकती भावना की घाटियों में घूमती हुई थक कर तेरे प्यार की घनी छाँव में सो जाऊँगी ।'

—'तो रेखा, आओ हम बैठकर इसी क्षण यह प्रतिज्ञा करें कि हम सदा एक-दूसरे के रहेंगे ।'

—'लेकिन आनन्द अभी वह क्षण नहीं आया है ।'

—'तो क्या हम स्थायी सम्बन्ध बनाने के लिए उस एक क्षण के गुलाम बने रहेंगे जो अभी नहीं आया है ?'

—'हाँ आनन्द, हम स्वतंत्र कब हैं ? हमें एक क्षण के लिए अनन्त क्षणों की धारा में बहना पड़ता है । वह एक क्षण युगों के क्षणों को बाँध सकता है । वही शक्तिशाली और निर्णायक क्षण है, जो अभी नहीं आया हैं ।'

कई दिन बाद रेखा कालेज आई थी । चेहरे से अस्वस्थ थी । शीला उसके साथ थी । उसे देखकर आनन्द को लगा जैसे ज़हरीले व्यंग्य के साथ मुस्कराने लगी है । वह रेखा के पास नहीं जा सका । उसने उसकी आँखों में देखा जैसे झील में कोई हंसिनी कुलबुलाती-सी तैर गई है । उसके मन में प्रश्न उठा—'क्या झुकी हुई पलकों से घिरी उन आँखों में दर्द का साया उसी ने डाला है ? क्या शीला का ज़हरीला प्रसंग कल्पना नहीं सत्य है ?'

घर लौटने पर वह बड़ा दुखी हुआ । उसने रेखा से क्यों नहीं पूछा कि वह कौन सी विवशता थी जिसने उसे आने नहीं दिया था । वह कौन-सा दुःख है जो उसे साल रहा है ? यही सोचते-सोचते रात के ग्यारह बज गये । मन में तनाव भर गया । वह रेखा से मिलने चल पड़ा । हॉस्टल का दरवाज़ा बन्द था, उसने चारदीवारी पर नज़र डाली । वहाँ काँटेदार तारों की बाढ़ लगी हुई थी । उसने चढ़ने का साहस किया । कई काँटे उसकी हथेलियों और जाँघों में चुभ गये । वह जैसे ही अहाते में कूदा तो पीछे से उसका कुर्ता फट गया । वह सोचने लगा कि ऐसी दशा में क्या उसे रेखा से मिलना चाहिए ? भावना ने निर्णय कर दिया कि साहसिकता ही प्रेम

की कसौटी है। नारी पुरुष से यही आशा करती है कि उसका प्रेमी बहादुर हो और कोई भी संकट मोल ले सके। जब वह आगे बढ़ा तो उसे खुशी हो रही थी कि ऐसा निर्णय लेकर उसका मानसिक तनाव खत्म हो गया है क्योंकि वह अपने तन-मन में हल्कापन महसूस कर रहा था। लेकिन अन्दर का दरवाजा भी बन्द था। रेखा का कमरा दूसरी मंजिल में था। उसके कमरे के पीछे पाइप पर उसकी नज़र अटक गई जिसके साथ रेखा की खुली हुई खिड़की थी। वह ऊपर पहुँच गया। रेखा सो रही थी। टेबुल लैम्प का हलका-सा उजाला था। वह देर तक खड़ा-खड़ा उसे ताकता रहा, फिर उसने अपना हाथ आगे बढ़ा दिया। रेखा चौंककर जाग गई। वह पहले भयभीत हुई लेकिन सावधान होते ही उसने आनन्द को पहचान लिया—'अरे तुम ! इस समय यहाँ कैसे ? यह तुम्हारा क्या हाल है ?'

—'मैं असल में रेखा तुम से···?'

—'क्या बदतमीजी है ? मुझे तुमसे यह आशा नहीं थी कि तुम इतने गिर जाओगे।'

—'रेखा प्लीज़ ! तुम मुझे गलत मत समझो। मैं तुम्हें···।'

—'अच्छा तुम इसी समय चले जाओ वर्ना···।'

—'रेखा मेरी भी तो सुनो। मैं···।'

—'पहले आप यहाँ से तशरीफ ले जाइये और याद रखिये कि अब मुझसे मिलने की कोशिश न करें। मैं आपको बिल्कुल नहीं चाहती। मुझे ऐसा मजनूँ नहीं चाहिए।'

उसका सुनहरा चेहरा टूटकर बिखर गया। आधी रात का अँधेरा सिसकने लगा था। आनन्द को लगा जैसे उसका आकार घटता जा रहा है। वह बौना हो गया है। जो विस्तार उसके शरीर से प्रत्येक दिशा में फूट पड़ा था वह सिमट कर दबाव का अनुभव कर रहा था। उसे लगा कि तारों भरा आकाश टूट कर चूर हो जायेगा।

लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ क्योंकि रेखा जितनी आसानी से दूर हो जाती उतनी ही आसानी से उसके पास भी पहुँच जाती। कुछ दिन बाद रेखा स्वयं उसे मनाने झील के किनारे उसे मिली। रेखा ने कहा—'क्या

तुम झील में पड़ते हुए अपने साये को देख रहे हो ? लहरों के शान्त होने पर अपना बिम्ब बना रहा है। शाम के सूरज की किरणें सितार की तरह झनकार पैदा कर रही हैं। क्या तुम इन्हें सुन सकते हो ? इस मौसम में एक स्वर व्याप्त हो गया है जो हम दोनों के गीत का है। जो अभी तक हमारे दुखों से नहीं निकला। वह हम दोनों के मन में ही गूँज रहा है। क्या तुम इसका अर्थ समझ रहे हो ?'

—'नहीं रेखा, मुझे कुछ नहीं सुनाई देता, कुछ भी समझ में नहीं आता। वैसे इतने आते-जाते रास्ते हैं लेकिन सारी सीमाएँ इनके लिये बेअसर हो गई हैं। ये फल-फूलों से लदे झूमते हुए वृक्ष, ये लहराती लचकती लताएँ और सुगन्ध से मदहोश भ्रमरों का गुंजन—सभी दृश्य शब्द-जाल हैं, सिर्फ अर्थहीन और खोखले।'

—'लेकिन आनन्द, पिछले पहर की खामोशी में जो दिल के द्वार पर दस्तक होती है क्या तुम उसे नहीं सुनते ? ढलती हुई रात में एक आवाज़ अहसासों से टकराती है क्या तुम उसे महसूस नहीं करते। जब अन्दर-ही-अन्दर टूटने और बिखरने की ऋतु-क्रिया होने लगती है, तब क्या तुम अपने को बचा पाते हो ? उस समय व्यक्ति मर जाता है और उसमें कोई और ही जी उठता है। क्या वह क्षण सत्य नहीं है ?'

आनन्द ने उसी क्षण रेखा की आँखों में झाँका। रेखा लजा गई। वह आनन्द के और निकट सिमट आई थी। आनन्द के शरीर से आग की लपट बार-बार टकरा रही थी। तभी उसे न जाने क्या हुआ। वह पिघलती बर्फ को छोड़कर उठ खड़ा हुआ। शायद वह क्षण अभी नहीं आया था।

दुहरी टूटन

आज अभी-अभी मुझे ऐसा लगा जैसे मैं एक सुलगती डाल पर बैठा हुआ एक पंछी हूँ लेकिन फिर भी किसी प्रकार की घुटन या टूटन महसूस नहीं हो रही। शायद दर्द गहराई में उतरकर किसी ज्योति को खोजने के लिए कहीं दूर चला गया है और इस समय मेरे अस्तित्व को अर्थहीन बनाकर पीछे छोड़ गया है। सामने कहीं भीगा हुआ पत्र पड़ा हुआ है जिसके अर्थ को पन्द्रह-बीस बार निचोड़ने के बावजूद फिर मरोड़ने लगता हूँ। दिमाग में अक्षर कील की तरह चुभने लगते हैं और फिर चेतना जाग जाती है। उसने लिखा था—'जीवन की संध्या में धुँधलके के बावजूद भी आज मैं अपने प्रेम की छोटी पोथी के पन्ने उलट रही हूँ। तुम तो जानते हो कि जब मैं अपनी ज़िद् पर उतर आती हूँ तो मुझे कोई रोक नहीं सकता। आँखों की रोशनी थककर सोने वाली है लेकिन अन्दर की रोशनी की कुछ किरणें मन के प्याले में भर रही हूँ। क्या यह रोशनी कभी नीत सकती है ? कभी नहीं। दिन तो किसी-न-किसी प्रकार गुज़र जाता है, लेकिन रात इस रोशनी से लड़ने के लिए आती है, तभी भयंकर अँधेरे में कई बार तुम्हारी तुलना अपने पति से करने लगती हूँ।' मेरी आँखों के सामने उसके पति का चेहरा अपनी सौम्यता के साथ झूल जाता है। और फिर, 'हाँ, बहुत-सी बातों में तुम दोनों एक से हो लेकिन कुछ बातों में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। तुम एक ऐसे पत्थर हो जिससे उद्दाम सरिता की तरह लहराती हुई मैं टक्कर मार-मार कर बिखरने की साध लेकर जीना चाहती थी। ये एक गम्भीर समुद्र हैं जिसमें अब अपने अस्तित्व को सौंपने की इच्छा दृढ़वती हो उठी है। मेरे पति मेरा जितना खयाल रखते हैं तुम सौ जन्मों में भी नहीं रख सकते। वह देवता हैं और तुम कमज़ोर आदमी। यही परिस्थिति

दुःखदायिनी है। मैं पछता रही हूँ कि पत्नी के रूप में उन्हें वह सब-कुछ न दे सकी जिस पर उनका अधिकार था। ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि अगर दूसरा जन्म मिले तो मैं उन्हें अपने प्रियतम के रूप में पाऊँ और तुम्हें पति के रूप में।' यहाँ आते ही मेरी आँखें अपने-आप बन्द हो जाती हैं जैसे उसके अन्दर की रोशनी ने चकाचौंध पैदा की हो। वह आगे लिखती है—'मेरी हर रात शान्त समुद्र की भाँति थम-सी जाती है, समय सूने तट की भाँति जकड़े रहता है और क्षणों का ढेर धीरे-धीरे अपनी चमक खो बैठता है। ऐसा लगता है कि आसमान के सभी तारे टूट-टूटकर मेरे इर्द-गिर्द जमा होते जा रहे हैं। जानते हो राजू! यह पत्थर के टुकड़े मेरे अनमोल रत्न हैं। अगर मर गई तो सर्पिणी बनकर इन्हीं को छुपाए हुए कुंडली मार कर बैठ जाऊँगी।' इस भयंकर कल्पना से मुझे रोमांच हो उठता है। सहसा पसीने से लथपथ होने के बाद फिर पत्र के अक्षरों को बटोरने में लग जाता हूँ। शायद इसी आशा से कि कोई विशेष संदर्भ-सूत्र मेरी पकड़ में आ जाए जो जीवन का संबल बन सके। 'तुमने अपनी सहपाठिनी के बारे में लिखा था, मैं तुमसे बिनती करती हूँ कि उससे शादी कर लो। तुम दोस्ती में इतने आगे क्यों बढ़ चुके हो कि अब पीछे लौटना अमानवीय है। हमारे समाज में लड़के और लड़की की मित्रता का कोई अर्थ नहीं। बहुत दिनों से मैं एक बात तुमसे छुपाए हुए बैठी थी। प्यारे राजू! पहले वादा करो कि तुम मेरी इस आखिरी इच्छा को पूरी करोगे। कर लिया वादा? हाँ, अब सुनो। दो महीने पहले डॉ० ने मुझे हॉस्पिटल से छुट्टी दे दी थी। उम्मीद है कि टी० बी० की बीमारी मौत की अतल गहराई में दबोच देगी। फिर सब-कुछ ठीक हो जाएगा। वादा करो तुम अफसोस नहीं करोगे और मेरी आखिरी इच्छा ज़रूर पूरी करोगे। मेरे राजू, रा···जू।' कड़वी हँसी हँसने के साथ पुरनम आँखों के नीले आकाश में फैलती धूप और बस-स्टैंड—

—'नमस्ते जी।'

—'तुम यहाँ कैसे?'

—'इसी कालेज में नौकरी मिल गई है।' ग्लैमर-गर्ल दिखाई देने

वाली सहेली ने जवाब दिया ।

—'बड़ी खुशी हुई शर्रो !' मैंने मुस्कराते हुए कहा ।

—'लेकिन जनाब असली खुशी का दिन बाईस तारीख है ।' उसकी सहेली ने हँसते हुए कहा ।

—'बाईस तारीख को क्या होने वाला है शर्रो ?' मैंने वेसब्री के साथ पूछा ?

शर्रो खामोश थी । चेहरे पर कुछ मुरझायी सी लज्जा पुत गई, शायद धूप निकल आने पर उड़ गई । चेहरा ऐसा हो गया जैसे नवम्बर की पीली-पीली धूप में सूखी चिनार की पत्ती हो । अगस्त की तरुण धूप जो सेबों को अरुणाई देती थी जिसका स्पर्श होने से शर्रो के गुलाबी कपोलों पर अबीर की-सी मसलन हो जाती थी । उस रोज़ नदी के किनारे अकेला बैठा हुआ था कि वह आई और मेरी खामोशी को रोका—'देखिए यह अच्छी बात नहीं है । आज पिकनिक के दिन आप खोये-खोये से नहीं रह सकते । आज तो हमारा साथ देना पड़ेगा ।' यह सुनकर मैं चौंक पड़ा था । चौंका क्यों ? सवाल सुनना ही पड़ा । 'आप कहाँ रहा करते हैं । श्रीमान जी !' और सच बात थी मैं बहुत दूर चला गया था । किरण ने कहा था—'आज पिकनिक के दिन वह गीत तुम्हें सुनाना ही पड़ेगा ।'

—'कौन सा ?'

—'वही जिसमें तुमने मुझे रूप-गंध की सरिता कहा है । जब तुम थक जाओगे तो यही सरिता अपनी लहरों की सेज पर तुम्हें सुला लेगी ।'

—'तुम भी अब कविता करने लगीं ।'

—'क्यों नहीं ! तुम्हारा कुछ तो असर पड़ना ही चाहिए । राजू, सच कहती हूँ मैंने तुम्हें अपनी पूजा में बसा लिया है । अब तुम्हीं मेरे अन्तर के दीप बनकर मुझे रोशन कर रहे हो ।'

—'किरण, मुझे डर लगता है कि कहीं तुम वीणा की करुण रागिनी न बन जाना ।'

—'तो क्या होगा । तुम उसमें स्वर-सरगम की तरह बसे रहोगे ।'

और उस रोज़ का वही मज़ाक कड़वा सत्य बन गया । दूर कही न भाग सका । किरण की शादी के बाद वह जब वापस आई तो मैंने पूछा—

'कहो कैसी हो ?'

वह ठहाका मार कर हँस पड़ी थी और फिर थोड़ी देर बाद फूट-फूट कर रोने लगी थी। मैं अवाक् देखता रह गया उसे।

किरण को सुन्दर सुशील वर मिला था—कोई ऊँचा आफीसर। मैंने उसकी शादी में इतना काम किया कि किसी से दो मिनट बातें करने का समय भी न निकाल सका। मैंने उसे समझाया और जितना समझाया उतनी ही ज्यादा वह रोई। फिर मुझसे न रहा गया—'आखिर तुम रोती क्यों हो ? क्या किसी ने तुम्हारा दिल दुखाया है ?'

—'हाँ।'

—'किसने !'

— 'तुमने।'

—'मैंने !'

—'हाँ, हाँ, तुमने।'

—'किरण, यह तुम क्या कह रही हो। तुम्हारी शादी पर जितना मैं खुश हुआ हूँ उतना शायद ही कोई हुआ होगा। ईश्वर तुम्हारे सुहाग को हमेशा महफ़ूज़ रखे। तुम मुझे ग़लत समझ रही हो। मैं इतना नीच नहीं हूँ। तुम्हें सुखी देखकर मुझे बिलकुल जलन नहीं हुई। मुझे यकीन है कि तुम्हें मेरा उपहार पसन्द आया होगा—वह जूड़े के पिन।'

—'बस इसी बात का तो अफसोस है।' वह रोती हुई कहने लगी—'तुमने मेरे साथ मज़ाक किया है। मेरी भावनाओं से खेलकर तुम्हें क्या मिला ? मैं समझती थी कि तुम्हें मुझसे सच्चा प्रेम है लेकिन सब-कुछ झूठ निकला। मेरी शादी की खबर पाकर तुम रोये क्यों नहीं, मुझे रुलाया क्यों नहीं ? तुममें बग़ावत क्यों नहीं पैदा हुई ? मुझे खुशी नहीं चाहिए। मुझे जूड़े की पिन नहीं चाहिए। मुझे चाहिये तुम्हारे आँसू जो दुनिया की हर चीज़ से खूबसूरत उपहार हैं। काश ! तुम मेरी शादी पर जलते। शादी के बाद जिस रूप में देखने की लालसा मुझे यहाँ तक ले आई वह पूरी न हुई। मैंने सोचा था कि मेरा राजीव जब मुझे देखेगा तो जलते हुए सूखी पपड़ी वाले होठों में पतझर के सूने मौसम की तरह रूखी-रूखी आँखों से घृणा के भाव दर्शाएगा। वह घृणा मेरे लिए अनमोल वस्तु

होगी। फिर हम एक-दूसरे की जली-कटी बातें सुनते-सुनते उन परिस्थितियों पर विचार करते और अपने अनुकूल कोई राह बना पाते···।'

और फिर उस दिन के बाद कमरे में पहाड़ आँसू बहाता रहा। चाँद ने तकिये में मुँह छुपा लिया। अब हवा के मामूली से आघात पर इस ऊँचे देवदारु को झुकने में कोई लाज नहीं लगती। हर आघात से अन्दर ही अन्दर टूटता रहता है।

—'अरे! आप फिर खो गए हैं।' उसका सवाल फिर चौंका गया। मेरे हाथ को अपनी दोनों हथेलियों के बीच रखते हुए पूछा —'आप बताइए ना, प्लीज़! बार-बार चौंक क्यों पड़ते हैं। अब चलिए, उठिए। सामने जो शिवजी का मन्दिर है वहाँ तक सैर करें। देखिए, कैसा सुन्दर दृश्य है। इच्छा होती है कि कोई मुझे कविता लिखना सिखा दे। आप सिखा सकते हैं? मेरे अन्दर कविता के भाव तो हैं पर ऐक्सप्रेस करना नहीं जानती। आइए, इस चश्मे का ठंडा पानी पियें! हैं, हैं···न न ना···आप न उतरिये; मैं अपने हाथों से पिलाऊँगी।'

—'वह कैसे?'

—'अपनी अंजलि में भरकर।'

और शर्री ने सचमुच अंजलि में पानी भर लिया। पहले तो झिझका लेकिन एक बच्चे की तरह शर्री की आज्ञा को न टाल सका। शर्री ने मेरे भीगे हुए रूमाल से अपने होठों को पोंछा।

—'आप दर्दभरी कविताएँ क्यों लिखते हैं? बताइये न, प्लीज़! आज मैं पूछ के ही रहूँगी।'

—'शर्री, बड़ी किस्मत से ही दर्द मिला करता है। पहले मैं बड़ा कठोर आदमी था। सब सह लेता था। अब नहीं सहा जाता तो लिख लेता हूँ। यह दुहरी टूटन है। सब-कुछ दुहरा हैं, आँखें खोलकर देखिए तो वह बादलों से घिरा हुआ चाँद। आँख बन्द करके देखिये तो अपने साथ भी एक चाँद बादलों से घिरा हुआ, टुकड़ों में टूटता चला गया है। एक टूटन बाहर एक अन्दर। बाहर की वस्तु ही अन्दर की टूटन पैदा करती है। ऐसे ही समय अन्दर की वस्तु पास बैठ जाती है। समय रथ की चाल से नहीं चल रहा मन के वेग से भी तेज़ चाल है उसकी।' तभी

शर्रो मेरा हाथ छोड़ कर उठ गई थी।

—'आप बाईस तारीख को इनकी शादी में ज़रूर आयेंगे न!' सहेली ने फिर पूछा।

मैंने शर्रो की दृष्टि में बहुत-सी टोकरियाँ उलट दीं। शर्रो की आँखों की तरलता में वे उसी तरह डूब गयीं जैसे कंकड़ तालाब में डूब जाते हैं। कई बार कुछ लहरें उछलीं लेकिन तटों ने उन्हें समेट लिया।

—'आप बड़े बेरहम हैं। ऐसे लापता हुए कि आज मिले हैं। बेचारी शर्रो···।' फिर दो मिनट का सन्नाटा। बस भी आ गई थी। वे दोनों उसमें सवार होकर चल दीं। दृष्टि के सामने एक धूल का गुब्बार उठा। मैं कहना चहता था, 'शर्रो मुझे माफ कर दो। तुमने मुझे एक मित्र की दृष्टि से देखा और मैंने निभाने की कोशिश की। इस बीच तुम्हारे दोस्त पर क्या गुज़री। ऐसे शुभ अवसर पर मैं कैसे तुम्हें बता सकता। तुम खुश रहो और यकीन करो कि मैं ऐसी मिट्टी का बना हुआ हूँ कि हर हालत में दूसरों के अनुसार ढल सकता हूँ। रहा अकेलापन तो मैं उससे समझौता कर चुका हूँ।' एक बार तुम्हीं ने पूछा था – 'आप अपने अकेलेपन से ऊबते नहीं? आपका मौन कितना भयंकर है? इस बेमाप एकांत को कैसे जीत पाओगे?'

मैंने जवाब दिया था—'शर्रो, मेरा हृदय निर्वासित नहीं है। मैं अकेला होता ही कब हूँ। बाहर से मैं जितना एकांत दिखाई देता हूँ उतना ही अन्दर से कोलाहलपूर्ण। वहाँ मैं खेलता हूँ, हँसता हूँ, रोता हूँ, रूठता हूँ और मचलता हूँ।'

आज ही तो शर्रो की शादी का दिन है। पंछी सुलगती डाल पर बेसुध होता जा रहा है। उसके बेहूदे धुएँ में टँगा हुआ तनाव हड्डियों को मिलाता हुआ आत्मा में व्याप्त होता जा रहा है—समझ में नहीं आता, क्या करूँ? किरण की चिता की मुट्ठी भर राख पीकर सो जाऊँ? उसकी आखिरी इच्छा! हँसिये की तरह दुहरी होती हुई हड्डियों को मानो चीरती जा रही हो।

फिर घबराकर मैं बाहों में शून्य को कस लेता हूँ।

झूट-सच

—'आपसे मिलिए—आप, कलाकार अनूप।'

—'ऐं, अनूप !'

—'हाँ, अनूप आपका उपनाम है।'

—'और आप ! डॉक्टर गिरजा कुमार।'

—'अरे भई ! तुमने तकल्लुफ से काम लिया। कहना तो इस तरह चाहिए···।'

आप—प्रेम-पंछी।

आप—अजायब घर।

आप=कविराज।

और आप—हमराज़।

कैप्टिन माथुर के इस नए ढंग के परिचय को सुनकर क्लब में बड़े ज़ोर का क़हक़हा लगा। वे दोनों भी अपने परिचय पर ज़ोर से हँस पड़े थे। कवि थोड़ा-सा पागल ज़रूर होता है। वह पागल का डॉक्टर। कवि कलाकार का उससे ज्यादा कौन घनिष्ट सम्बन्धी हो सकता है। एक दिन वह सचमुच उसका हमराज बन ही गया। वह अनूप से रोज मिलता या अनूप उससे रोज मिलता। अनूप ने उसके अन्दर साहित्य के प्रति अमिट रुचि जगा दी थी। एक दिन हमेशा गम्भीर रहने वाले अनूप से उसने पूछ ही लिया—

—'अनूप डियर !'

—'हाँ भाई !'

—'तुमने कभी प्यार किया है ?'

—'नहीं।'

—'नहीं ? अच्छा, तुम्हें किसी ने प्यार किया है ?'

—'किसी ने भी नहीं।'

उत्तर सुनकर उसे सन्तोष नहीं हुआ क्योंकि अनूप का भोला और सुन्दर व्यक्तित्व प्यार के लिए ही बना है। उसे जो कोई देखता है, मुग्ध हो जाता है। लेकिन इसके भोलेपन की भी हद है। क्लब की मिस ब्यूटी सुगन्धलता पहले दिन ही अपना सब-कुछ न्योछावर कर चुकी है। आश्चर्य है उसे आभास तक नहीं। वह तो सचमुच अनूप ही निकला।

एक दिन फिर शाम के वक्त उसका दिल हमराज़ होने के लिए मचल गया—

'अनूप। तुम्हें अपने दोस्त की कसम है।'

'भाई ! कसम लौटाइये, मुझे मजबूर न करो।'

लेकिन उसका दिल तो आज सत्याग्रह कर बैठा था। हार मानकर भोले अनूप को ज़िन्दगी का सबसे सुन्दर नग़मा सुनाना ही पड़ा—

'कालेज की एक लड़की—चंचल, सुन्दर और बुद्धिमान। अनूप के साथ पढ़ाई में मुकाबला। परीक्षा में हारकर कालेज के बाटनीकल गार्डन में स्वयं अनूप से मिली। अनूप उसकी बड़ी-बड़ी आँखों की नीलाइयों में खो गया। कुमारी के पतले होंठों के कम्पन के साथ उसके दिल की धड़कनों का मधुर संगीत एकलय हो गया। लेकिन प्रणय-व्यापार में अनाड़ी होने के कारण उसके प्रेम का अपमान कर बैठी। उच्छ्वसित कुमारी से बेसुरा प्रश्न कर बैठा—

—'आपका अध्ययन कैसा चल रहा है ?'

—'खाक !'

—'मेरे पास चैटर्जी की पुस्तक है, आपको ज़रूरत हो तो लाऊँ ?'

—'रहने दीजिये।'

कहते हुए कुमारी ने आश्चर्य के साथ उसे देखा। झुँझलाहट और मूक वेदना के साथ दोनों हाथों से इस प्रकार नमस्ते की कि अनूप के होश उड़ गये। वह अपनी मूर्खता को समझ गया। लेकिन इतना न समझ पाया कि उसे क्या करना चाहिए था। वह चली गयी एक ऐसी उदासी और हीनता की तारीकी में डुबो कर कि तीन दिन तक कालेज जाने का साहस न कर सका। जब चौथे दिन कालेज गया तो चेहरे पर हवाइयाँ

उड़ रही थीं। उसको क्लास में घुसते देख लड़के और लड़कियाँ हँसने लगे। थोड़ी देर के बाद झुकी हुई पलकों को चोरी से उठाते हुए लड़कियों की तरफ़ नज़र घुमाई। कुमारी नीची नज़र किये हुए थी। प्रोफेसर साहब ने प्रवेश किया। सभी खड़े हो गये। प्रोफेसर साहब ने क्लास पर सरसरी दृष्टि डाली और मुस्कराते हुए अटेंडेंस रजिस्टर खोला। उस मुस्कराहट का अर्थ सारी क्लास समझती थी। एक के बाद दूसरा नाम बुलता गया। जब उसका नाम आया तो प्रश्न किया गया—'आप तीन दिन कहाँ रहीं?'

—'सर में दर्द था।'

—'सरिता ने तो कुछ नहीं बताया।'

सारी क्लास ने ज़ोर से क़हक़हा लगाया। कुमारी ने शिकायत-भरी नजरों से अनूप की ओर देखा। अनूप ने झिझकते हुए अपनी दोनों आँखों को समर्पित कर दिया। इस समर्पण से, दिल की सच्ची पूजा से, देवी फिर खुश हो गई। नाम बराबर बुलते जा रहे थे। उसका नाम न जाने कब बोला गया। उसे पता ही न चला। प्रोफेसर ने दुबारा नाम बोला, क्लास हँस पड़ी। तब उसे चेत हुआ। वह सकपका गया। प्रश्न हुआ—'क्यों जनाब आपकी तबियत ठीक है?'

—'जी···जी···जी···'

—'कहाँ थे?'

—'तीन दिन से बुखार आ रहा था, सर!'

—'मैं पूछता हूँ कि अभी-अभी कहाँ थे?'

क्लास ने फिर एक साथ ज़ोर से क़हक़हा लगाया। प्रोफेसर ने भी हँसते हुए कहा—'मुझे लगता है कि तुम्हारी तबीयत अब भी ठीक नहीं है?'

तब से दोनों एक-दूसरे में खोये-खोये रहा करते। यही क्रम साल भर लगा रहा लेकिन भीरु हृदय अनूप ने प्रेम की अभिव्यक्ति शब्दों द्वारा नहीं की। दोनों के होंठों को शायद विधाता ने सी दिया था लेकिन आँखों की वाचालता सब-कुछ प्रकट कर देती थी। वे एक-दूसरे के कितने निकट आ गए थे कि भौतिक भेद दूर हो गया था। उन्हें अपने निर्विकार मिलन में अपूर्व सुख मिला करता।

समय बढ़ता गया। प्रेम प्रगाढ़ होता गया। फिर एक ऐसी शाम उदासी के घने बोझ से लदी हुई आ ही गई। वही बाटनीकल गार्डन। कई साथियों की महफ़िल में पीपल के नीचे मखमली दूब पर बैठे हुए अनूप इस गोष्ठी के सभापति थे। कई साथियों के बाद नटखट दिनेश की कविता हो रही थी। सवाल हुआ—यह कविता किसकी प्रेरणा से लिखी गई है? दूसरे नटखट साथी ने जवाब में कुमारी का नाम लिया। दिनेश भी सारी कविता का अर्थ उसी से जोड़ता हुआ अनूप की ओर देखकर हँसने लगा। अनूप को बहुत बुरा लगा। वह उठने लगा लेकिन दूसरे साथियों ने ज़बर्दस्ती बिठा लिया। दिनेश ने एक गहरी आह छोड़ते हुए बहुत-सी कहानियाँ सुना डालीं। विक्षोभ के साथ सभा विसर्जित हुई। अनूप की ज़िन्दगी में तूफान उठ खड़ा हुआ। वह अपने रूहानी प्रेम को साँस तोड़ते देखने लगा। कुमारी भी उसके उदास उन्मन चेहरे को देखकर उदास और दुःखी रहा करती। प्रोफेसर साहब इस साल साठ मील दूर दूसरे शहर में पहुँच गए थे। इसलिए अनूप ने भी शहर छोड़ने का इरादा कर लिया। एक दिन वह सेमीनार रूम में बैठा हुआ था। एकान्त में बैठा हुआ कुमारी के प्रति घृणा-भाव भर रहा था। आँखें फर्श पर गड़ी हुई थीं। एकाएक उसे कुछ मालूम पड़ा। उसने अपनी नज़र ऊपर को उठाई तो अवाक् रह गया। कुमारी छलछलायी आँखों के साथ खड़ी हुई है। उसके होंठ हिलने लगे।

—'मुझसे कुछ भूल हो गई है क्या? मुझे माफ कर दो।'

—'कैसी भूल? मैं कौन होता हूँ माफ करने वाला?'

—'क्या···? कोई भी नहीं?'

—'हाँ, कोई नहीं।'

—'मैं तुम्हें ऐसा न समझती थी।'

—'मैं भी तुम्हें ऐसा नहीं समझता था। मेरी पूजा की तुमने कोई परवाह नहीं की। दिनेश से···।'

—'उसका नाम न लो। यह तो मेरा भगवान जानता है कि मैंने सिर्फ तुम्हें ही प्रेम की दुनिया का स्वामी बनाया और जीवन भर···तुम्हीं से हिफाज़त चाहती हूँ। करोगे न?'

कुमारी की आँखों से आँसू बहने लगे। अनूप का दिल पिघल गया। उसने रूमाल से आँसू पोंछ दिए। उसे घर पहुँचाकर वह लौट आया। अभी वह उसकी परीक्षा लेना चाहता था और आज तक वह परीक्षा ही ले रहा है।

डॉक्टर ने अपनी आँखों में आई बूँदों को साफ किया। फिर सोचने लगें—कैसे-कैसे भावुक होते हैं ये लोग। सारी ज़िन्दगी कुमार रहने का इरादा कर लिया है उसने! किस सुगन्धलता ने उसकी दावत की। अखबारों में खबर फैल गई कि दावत विवाह की नीयत से की गई है। कैप्टिन माथुर तो उसमें और भी रंग मिला रहे थे। डॉक्टर ने अनूप से पूछा—'क्या यह सच है अनूप?'

—'क्या?'

—'यही अखबारों की खबर।'

—'मुझे इतना नीच न समझो भाई! मुझे किसी की प्रेम-दुनिया की हिफाजत करनी है।'

तब दूसरे दिन ही उसने अपना सामान बाँध लिया। उन्होंने बहुत आग्रह किया लेकिन वह न माना। चलते समय उन्होंने अपनी शादी में शामिल होने के लिए ताकीद की। आज पूरे दो साल हो गये हैं। न उसका खत आया और न डॉ० साहब को पता चला कि वह कहाँ है? आज डॉक्टर की शादी की दूसरी सालगिरह है। सविता ने घर को ऐसा सजाया है कि उनका दिल खुशी के मारे नाच रहा है। वे दोनों खुशियों के बीच दो साल से रहते आ रहे हैं। ऐसी नेक पत्नी को पाकर वे अपने को खुशकिस्मत समझते हैं। उन्हें सविता सामने आती दिखाई दी। सुन्दर वस्त्रों में लिपटी हुई वह दुल्हन बनी हुई है।

थाल में दीपक जलाकर डॉक्टर साहब की आरती उतारने लगी। उसकी नज़रों से मंगल की वर्षा हो रही है। होंठ लजीली मुस्कान से भले लग रहे हैं। वरमाला का सुन्दर दृश्य हर साल ताज़ा हो जाता है। डॉक्टर की उँगली ने सिन्दूर भरी माँग में और भी सिन्दूर भर दिया। वह कृतज्ञ दिखायी दे रही है। लो निर्मला भी कैप्टिन माथुर के साथ बधाई देने आ गई।

टाई की नाट बाँधकर कोट पिन्हाती हुई निर्मला ने मुस्कराते हुए कैप्टिन माथुर की आँखों में अपनी आँखें डाल दीं। माथुर साहब के चहरे पर मधुर हास फैल गया। वे अपना हैट उठाकर चलने को तैयार हुए कि उसने उनका हाथ पकड़ लिया और बोली—'अभी नहीं, ज़रा ठहर जाओ।'

वह दौड़ती हुई गई और एक गुलाब की कली लाकर कोट के कालर में लगा दी। फिर बोली—'हाँ अब ठीक है।'

कैप्टिन ने खुश होकर निर्मला को अपने सीने से लगा लिया और प्रेम का पुरस्कार देकर फिर चलने लगे। निर्मला पीछे-पीछे दरवाज़े तक गई। वे कार में बैठ गये, वह सतृष्ण उन्हें देखती रही। जब कार चलने को हुई तो उसने फिर एक बार कहा—देखो, जल्दी आ जाना।

—अच्छा, डार्लिंग। कहकर कैप्टिन साहब ने एक बार फिर प्रेम भरी नजरों से अपनी नई दुल्हन को देखा और कार स्टार्ट कर दी। जब कार से उठी हुई धूल ज़मीन पर खामोश होकर बिछ गई तब निर्मला ने अपनी आँखें उधर से हटाईं और दरवाज़ा बन्द कर लिया।

इतवार का दिन। हीनेट पार्क में पिकनिक मनाते हुए दोनों जोड़े। ऊँची-नीची बनावटी पहाड़ियों के बीच में सुन्दर घास का मैदान। मैदान के बीच में फव्वारा जो केरी के लाल फूलों से घिरा हुआ दुगने आवेग के साथ प्रेम-फुहारों से उनको भिगो रहा है। निर्मला एकटक उसी दृश्य को देख रही है। कैप्टिन निर्मला को स्निग्ध नज़रों से देख रहे हैं। डॉ० साहब लेटे हुए पत्रिका पढ़ रहे हैं और उनके पास बैठी हुई सविता स्वेटर बुन रही है। यकायक डॉ० साहब चीख़ पड़ते हैं—वाह! खूब मिले यार! चौंक कर स्वेटर बुनना बन्द करते हुए सविता ने पूछा—'क्या मिल गया आपको?'

निर्मला ने फव्वारे की तरफ से नज़र हटाकर शरारत भरे लहजे में कहा—'मिल क्या गया? एक ढूँढो हज़ार मिलते हैं। उन्हीं में से कोई एक होगा। मेरा अन्दाज़ा ठीक है न जीजाजी?'

कैप्टिन माथुर ने क़हक़हा लगाते हुए कहा—'तुमने बिल्कुल पते की बात कह दी। कोई कवि होगा या कलाकार। इन्हीं लोगों से डॉक्टर का

गहरा रिलेशन होता है।'

सविता ने हँसते हुए कहा—'अच्छा तो जनाव ! छुट्टी के दिन भी साइकोलोजी की स्टडी कर रहे हैं।'

—'नहीं दीदी, ये तो पत्रिका में से शिकार फँसा रहे हैं। निर्मला ने फिर शरारत अंग्रेज लहजे में कहा।'

डॉक्टर ने झल्लाते हुए कहा—'तुम लोग खामोश नहीं रह सकते तो कहीं घूमने क्यों नहीं चले जाते ? मुझे लगता है कि पागलों की स्टडी करने से पहले तुम सबकी स्टडी करनी पड़ेगी।'

सविता ने हँसते हुए कहा—'अच्छा जनाब ! नाराज़ क्यों हो रहे हैं। अब बताइए भी कि क्या मिला है आपको ?'

डॉक्टर ने पत्रिका खोलते हुए बताया कि इस अंक में उनके बिछड़े हुए दोस्त अनूप की कहानी छपी हुई है।

सविता ने सहज मुस्कान के साथ कहा—'तब तो हम सभी सुनना चाहेंगे।' निर्मला ने अनिच्छा दिखाते हुए कहा—'जीजाजी ! आप बोर क्यों कर रहे हैं ? सभी कहानियाँ झूठ हुआ करती हैं—जीवन से दूर। अगर प्रेम के विषय में है तब तो सफेद झूठ ही होगा। मुझे तो कवियों और कलाकरों से सख्त नफ़रत है।'

डॉ० ने बात का खंडन करते हुए कहा—'क्या झूठ और क्या सच ? जीवन का सत्य ही झूठ-सच है। किसका जीवन झूठ-सच नहीं है। कलाकार इस जीवन का आदर्श होता है। अगर कोई कलाकार से नफ़रत करता है तो वह अपने जीवन से दूर भागता है। झूठ-सच से घबराना ही उसकी हार है।'

कैप्टिन ने हँसते हुए समर्थन किया—'वेरी गुड आइडिया। आप तो हमारे सामने एक बहुत बड़ी फिलासफी रख रहे हैं। अनूप भी तो पूरा फिलासफर था। सच मानिये आपके साथ जब पहला इंट्रोडक्शन हुआ तो मुझे यही डर लगा कि आप भी दुनिया के बड़े फिलासफर हो जायेंगे। मैंने जब भी आपका मैंटल हास्पिटल देखा तो मेरी आँखें अनूप को ढूँढती रही हैं।'

सविता ने कानों पर हाथ रखते हुए कहा—'अच्छा बाबा ! बहस

बन्द भी करो अब ।'

निर्मला ने क्षमा माँगते हुए डॉक्टर साहब से कहानी सुनाने की प्रार्थना की ।

डॉक्टर साहब उठकर बैठ गये और खुशी के साथ कहने लगे—

—'अलीगढ़ विश्वविद्यालय। विक्टोरिया गेट की ओर से दो नवयुवतियाँ अपने छोटे भाई के साथ चली आ रही हैं। उन्हें देखकर स्ट्रैची हाल के सामने आकर स्नेह ठिठक गया ।'

—'क्या नाम जीजाजी ? स्नेही ?'

—'नहीं भई ! स्नेह ।'

—'अच्छा फिर क्या हुआ ?'

युवतियाँ स्वाभाविक रूप से आगे बढ़ती जाती हैं । उनकी दृष्टि में कोई लक्ष्य है । इसलिये इधर-उधर नहीं देख रही हैं । स्नेह भी उनके पीछे-पीछे झाड़ियों की कतार में छुपकर देखता रहता है । वे ऊपर चढ़ जाती हैं और लगभग आधे घण्टे के बाद अग्रेज़ी विभाग के ज़ीने से नीचे उतर आती हैं । स्नेह धड़कते हृदय से सीढ़ियों पर चढ़ता है । विभाग का चपरासी बताता है कि अभी-अभी आगरे से आई हुई लड़की उसे पूछ रही थी । इतने में ही प्रोफेसर संजय अपने हाथ में बैग लिए हुए आते हैं । 'हैलो स्नेह' कहते हुए उसके निकट आ जाते हैं । विभाग का वही चपरासी दौड़कर बैग ले लेता है और चिक उठाता है । वे दोनों कमरे में जाकर बैठ जाते हैं । चपरासी काग़ज की चिट प्रोफेसर के सामने रख देता है । धीरे-धीरे फुसफुसाहट होती है—सरिता ! सरिता !

—'हाँ भाई साहब !' स्नेह ने धीरे से कहा—'सरिता अभी आधे घंटे पहले आई थी ।'

सविता नें चौंकते हुए पूछा—'क्या नाम ?'

डॉक्टर ने कहा—'सरिता ! क्यों ? क्या तुम्हारी कोई परिचित है ?'

—'हाँ मेरी सहेली थी ।' सविता ने उत्तर दिया ।

निर्मला ने कहा—'सविता नाम तो हज़ारों लड़कियों का होगा । इससे क्या ? और फिर यह तो कहानी ही है ।'

कहानी बढ़ती जाती है—

प्रोफेसर ने स्नेह से पूछा—'क्या तुमने खुद देखा था ?'

—'हाँ भाई साहब !'

—'तो बिठाया क्यों नहीं ? साथ कौन था ?'

—'सरला और छोटा भाई भी।'

—'बड़े बेवकूफ़ हो। किधर गईं वे ?'

—'यूनियन हाल होती हुई साइंस म्यूज़ियम की तरफ।'

—'अच्छा तुम जल्दी करो। साइकिल लेकर इस सड़क से चलो। मैं उस सड़क की तरफ से जाता हूँ। इंजीनियरिंग कालेज के पास मिलना।'

सितम्बर की चिलचिलाती हुई धूप। दो दीवाने धूल फाँक रहे थे। उन्होंने सारी यूनिवर्सिटी को छान मारा लेकिन वे नहीं मिलीं। थककर दोनों फिर अपने विभाग में आ गये। चपरासी ने बताया कि वे दोनों फिर आई थीं और क़रीब दो घण्टे बैठी रहीं। प्रोफेसर ने सर पीट लिया। सोचने लगे कालेज के प्रिंसिपल शायद उनके रिश्तेदार हैं। उन्होंने स्नेह को साथ लिया और शाम के पाँच बजे पहुँच गये लेकिन मालूम हुआ कि चार बजे की बस से वे लौट गई हैं।

कैप्टिन माथुर ने कहानी का तार तोड़ते हुए कहा—'अरे ! ये दोनों तो सो भी गईं।'

डॉक्टर ने शिकायत के लहजे में कहा—'सविता की यही आदत है कि मुझे बकवास करते हुए छोड़ देती है और सो जाया करती है।'

उन्होंने दोनों को जगाते हुए कहानी शुरू रखी—

सरिता ने दुबारा आकर चपरासी से पूछा और जब यह मालूम हुआ कि उनके आने की खबर पाकर भी संजय ने इंतज़ार नहीं किया तो बड़ा क्रोध आया। फिर भी दो घण्टे क्रोध में बैठी हुई इंतजार करती रही लेकिन निराश होकर अन्त में लौटने का इरादा कर लिया। वह आज संजय से अपने भाग्य का निर्णय करना चाहती थी क्योंकि उसके पिता विवाह के लिए मजबूर कर रहे थे। इस सम्बन्ध में पत्र भी लिखा था लेकिन संजय ने आगरा जाकर ही इसके बारे में बात करना उचित समझा था। इसलिए जल्दी उत्तर नहीं दिया। वे एकदम हाँ कहकर सरिता को चमत्कृत करना चाहते थे। सरिता उतावली में उनके पास आई थी।

यहाँ आकर उसका यह संदेह पक्का हो गया कि संजय जान-बूझकर उससे दूर भागना चाहते हैं। घर वापस जाकर पिता के प्रस्ताव को स्वीकृति दे दी। शादी की तैयारियाँ होने लगीं। सरिता ने अपने अतीत की खुशी को बेहोशी में भुला दिया। सरला भी उसमें योग दे रही थी। दोनों को रूमानी ख्याल झूठे मालूम होने लगे। एक हफ्ते के बाद संजय सरिता से मिलने गये। कोठी के चारों तरफ बड़ी सफाई हो गई थी। इमली के पेड़ के नीचे कुछ नौकर कालीनों को पीट-पीट कर साफ कर रहे थे। लान में बच्चे खेल रहे थे। संजय ने कोठी के बरामदे में प्रवेश किया। टाइगर भौंकने लगा। बैल को बजाया। सरिता ने दरवाज़ा खोला और चौंक पड़ी। उसके शरीर पर पुती हुई हल्दी देखकर संजय ने विस्मित नेत्रों के साथ पूछा—'यह क्या सरित ?'

—'जो कुछ तुम्हें दिखाई देता है।'

—'लेकिन···!'

—'लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। आप यहाँ से चले जाइए।'

—'सुनो भी···।'

—'अब कुछ नहीं सुनूँगी।' भर्राती आवाज़ में कहते हुए दरवाज़ा बन्द कर लिया।

संजय की आवाज़ 'सरिता' के नाम से कोठी में गूँज गई। नौकरों ने चौंक कर काम छोड़ दिया और जबरन संजय को धकेलते हुए कोठी के बाहर कर दिया। जंजीर से बँधा हुआ टाइगर बड़े ज़ोर से भौंक रहा था।

—'यह क्या सविता !' डॉक्टर ने उसकी आँखों में आये हुए आँसुओं को देखकर पूछा।

—'कुछ नहीं, यही कि···बेचारा संजय···।'

—'हाँ बेचारा' भई ! तुम तो बड़ी भावुक निकलीं। डॉक्टर ने इतना कहते हुए कहानी को जारी रखा—

"मैंटल हास्पिटल रोड से आगे बढ़ते हुए सिकन्दरा का प्रसिद्ध मकबरा है जहाँ मुगले आज़म अकबर सुख की नींद सो रहे हैं। हर साल यहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है। शायद आगरा अपनी स्वप्न-नगरी के सृष्टा का

दर्शन करने को व्याकुल हो जाता है। सुन्दर ऊँचा दरवाज़ा और भी गर्वोन्नित दिखाई देता है। हिन्दू-मुस्लिम सभी उस महान् सम्राट् की याद में उमड़ते चले आते हैं। मकबरे की मंज़िलों में उनकी श्रद्धा भर जाती है। एक युवक और उसकी पत्नी दोनों मक़बरे के मैदान वाले चबूतरे पर बैठे हुए हैं। बड़ी देर बैठने के बाद वे मक़बरे की सबसे ऊँची मंज़िल पर चढ़ जाते हैं। वे सुन्दर चिकने फर्श पर बैठे हुए थे कि इतने में ही एक फटे वस्त्रों वाला जिसकी दाढ़ी बेतरतीब बढ़ी हुई थी, ऐसा पुरुष उनकी तरफ आया। वह उसकी पत्नी को घूरने लगा। युवती ने एक रुपया फिर दो रुपए का नोट दिया। उसने नहीं लिया। पर्स में से पाँच रुपये का नोट निकाल कर दिया। उसने ले लिया लेकिन नोट के कई टुकड़े किये और भयंकर अट्टहास करने लगा।'

कैप्टिन माथुर ने बीच ही में डॉ० साहब को रोक लिया—'क्या आप सचमुच कहानी सुना रहे हैं या अपनी तरफ से हमारी घटना को दुहरा रहे है? क्यों निर्मला, यह तो वही घटना है। है न?'

—'हाँ, हाँ बिल्कुल वही है। लेकिन ताज्जुब है कि अनूप को यह कैसे मालूम हुआ?'

डॉक्टर ने खुश होते हुए पूछा —'अब तो हुई मेरे कलाकार की कायल।'

कैप्टिन माथुर ने जिज्ञासा का भाव प्रकट करते हुए पूछा—'फिर क्या हुआ?'

लेकिन बात वहीं तक होती तो पति को क्रोध न आता। उस पागल ने नोट के टुकड़े तो युवती के मुँह पर दे मारे और फिर अट्टहास करने लगा। युवक को क्रोध आया और उसने पूरे ज़ोर के साथ ऐसा चाँटा मारा कि पागल ज़मीन पर बेहोश होकर गिर पड़ा।

—'यही बात हुई थी; क्यों निर्मला?' डॉ० ने पूछा।

—'हाँ जीजाजी। ये बड़े वैसे हैं। इन्हें उसके दुबले शरीर पर हमला करते हुए ज़रा भी तरस नहीं आया।'

—'मैं बड़ा शर्मिंदा हूँ।' कैप्टिन ने कहा—'फिर क्या हुआ?'

बादल छाये हुए थे। ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। भीड़ सिकन्दरा से आगे जमुना के घाट की ओर जा रही थी। युवक-युवती भी भीड़ के

साथ चले जा रहे थे। रास्ते के दोनों ओर राजकीय बाग़ था। बबूलों की हरीतिमा में भी सौन्दर्य होता है। पन्द्रह-बीस मिनट में वे घाट पर पहुँच गये। शिवजी के बहुत से छोटे-बड़े मन्दिर। फूलों से जमुना की धारा भरी हुई। मन्दिर फूलों से महक रहे थे। बड़ा रहस्यात्मक दृश्य था। युवक-युवती एक मन्दिर से दूसरे मन्दिर में जाते रहे। फिर जमुना के किनारे खड़े हुए दृश्य देखने लगे। जहाँ पर युवक खड़ा हुआ था यकायक करार टूट गया और पानी के आवेग के साथ युवक चढ़ती जमुना में गोते खाने लगा। युवती की चीख निकल पड़ी। 'बचाओ-बचाओ' की नाकाम आवाज़ गूँज रही थी, लेकिन बचाने के लिग प्राणों की बाज़ी लगाकर कूदने का साहस किसी ने नहीं किया। सहसा एक क्षीणकाय पुरुष कूद पड़ा। बड़ी तेज़ी के साथ बहते हुए युवक के हाथ को पकड़ लिया। तिनके का सहारा पाकर युवक सम्हल गया। वह पार आ गया। सभी लोग ताज्जुब कर रहे थे कि टी० बी० के इस मरीज़ में कहाँ से ताकत आ गई? युवक-युवती ने उसी पागल को कृतज्ञता भरी दृष्टि से देखा। युवक उससे क्षमा माँगने लगा। पागल ने कुछ कहा नहीं और दृष्टि से ही क्षमा कर दिया।

—'जीजाजी, वह पागल नहीं, ज़रूर कोई देवता है। वह उसी जगह एक टूटे मन्दिर में रहता है। जीजाजी! दर्शन करने चलेंगे उसके?'

—'हाँ ज़रूर! उस देवता के मैं भी दर्शन करूँगी।' सविता ने कहा।

डॉक्टर कहानी की घटनाओं का पारस्परिक सम्बन्ध ढूँढ रहे थे, क्योंकि उन्हें सभी सूत्र बिखरे-बिखरे दिखाई दे रहे थे।

आज चारों प्राणी उस देवता के दर्शन करने चल दिये। मार्ग बड़ा निर्जन था। बादलों के बीच में से सूरज सत्य की तरह चमक रहा था। बबूलों में भी एक अजीब सन्नाटा छाया था। वे घाट पर पहुँचे। उन मन्दिरों में फूलों की महक नहीं थी क्योंकि पुजारी जाने की तैयारी कर रहा था। कई लोग झुंड बनाये हुए खड़े थे। एक व्यक्ति उस देवता को शिवजी का प्रसाद चढ़ा रहा था। आवाज़ धीमी निकल रही थी। डॉक्टर चीख भरते हुए उस देवता से चिपट गये। निर्मला ने उसके चेहरे पर गहरी नजर गड़ा दी। वह उसके पास बैठी हुई थी। बढ़ी हुई दाढ़ी के

बादलों के पार उसे कुछ क्या सब-कुछ याद होता गया। देवता ने उसके सर पर हाथ रखते हुए क्षीण स्वर में कुछ कहने की कोशिश की। वर्ण-माला के कुछ व्यंजन टूटी माला के फूलों की तरह बिखर गये।

—म ऐं न······तुम् म हार् रे······प······र······म······कि······दुनि······फाजत······क् क्······की······ह ह······हे······न ?

और फिर हमेशा के लिए मिट्टी के पुतले वाला देवता अदृश्य हो गया। मन्दिर खाली पड़ा था। निर्मला बेहोश होकर ज़मीन पर ढुलकने लगी। कैप्टिन ने उसको सम्हाल लिया। सविता अवाक् सारे दृश्य को देख रही थी। वह भी शायद अपने झूठ-सच वाले जीवन में खो गई थी। डॉक्टर को आज अपने मित्र की अस्फुट वर्णमालिका में कुछ जीवन-सूत्र मिल गये थे। उन्हें अपनी स्टडी से एक बिलकुल नवीन तथ्य की प्राप्ति हुई थी।

राजमार्ग के यात्री

दिल्ली की चौड़ी सड़क, राजमार्ग। उसके दोनों ओर के फुटपाथ जन-समूह से खचाखच भरे हुए। सड़क के एक किनारे पर कटपीस के टुकड़े बिछाये हुए लोग कपड़े बेच रहे हैं। फेरी वाले, खोमचे वाले, आइसक्रीम वाले, खिलौने वाले, फल वाले समवेत स्वरों में बोलते हैं कि एक दूसरे की आवाज़ें उलझी हुई मालूम पड़ती हैं। इन्हीं उलझी हुई आवाज़ों में सर-सर कारें, खट-खट ताँगे, भौं-भौं मोटरें, टन-टन ट्रामें और घिर-घिर स्कूटरों के आने-जाने का ताँता लगा रहता है। लेकिन इतना ज़रूर है कि सभी किसी-न-किसी जगह आ-जा रहे हैं, यहाँ तक कि जेबकट भी तो बैठे नहीं हैं। वे भी अपने शिकार के पीछे लग जाते हैं। भिखारी भी हैं जो कम-से-कम बीस कदम साथ चले जाते हैं अपने हाथ फैलाये हुए। यहाँ कोई बेकार नहीं दिखाई देता। जो बेकार हैं वे दलाल बने हुए हैं। बाहर से आने वाले की थैली का अनुमान करके उनकी खींच-तान करते हैं—कि मैं आपको सस्ता माल दिला दूँगा। इधर आइए बाबू, अच्छा माल दिला दूँगा। यह कहते शरीफ लोगों के पीछे लग जाते हैं। यही जिन्दगी की रवानी है। वह देखो, सामने बड़ा जमघट है। सिनेमाघर की टिकटें बँट रही हैं। रेलगाड़ी में सारा सामान वर्गों में काटा गया है—स्पेशल, फर्स्ट सैकिंड तथा थर्ड क्लास लेकिन सिनेमाघर में तो समाज के और ज्यादा टुकड़े मिलते हैं। यहाँ अपर बाक्स, लोअर बाक्स, बालकोनी, अपर गैलरी, लोअर गैलरी, स्पेशल क्लास, फर्स्ट क्लास, सैकिंड क्लास तथा थर्ड क्लास। उसके पड़ोस में एक ताँगेवाले की स्त्री ने लालटेन बेचकर पिक्चर देखी। कल की ही तो बात है। यही सब-कुछ आनन्द सोचता चला आ रहा था कि पीछे से साइकिल की टिन्न हुई सर्र से साइकिल सवार लड़की निकल गई। बग़ैर आस्तीन की चिपकी कमीज़। उसकी खुली पीठ को वह देखता रहा।

काली, पीली, नीली, हरी, लाल तितलियों की यह शाम कितनी रंगीन दिखाई देती है। लेकिन उसी समय उसे कोई भूली हुई बात याद आई। वह तेज़ कदमों से आगे बढ़ने लगा। वह इतनी बदहवासी से जा रहा था कि पीछे से एक कार के रुकने की आवाज़ हुई। बड़ी तेज़ी से ब्रेक लगे। ड्राइवर ने कन्धे को झकझोरते हुए कहा—'तुम्हारे को मौत सिर पर है। बच गया वर्ना कार के पहिये के नीचे हड्डी-पसलियाँ चूर-चूर हो जातीं। पागल कहीं का!' आनन्द काँप कर रह गया। उसने मुड़कर देखा—कार बिल्कुल उसके ऊपर थी। वह धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। पीछे से एक आवाज़ सुनाई दी—'मिस्टर आनन्द, डियर आनन्द!' आवाज़ परिचित थी। आनन्द रुक गया और फिर चलने लगा। उसके पैर रुकने का समझौता नहीं कर रहे थे। युवती पास आ चुकी थी। —हैलो आनन्द! आज खैरियत हुई। चलो चलें। आनन्द का हाथ अब उसके हाथ में था, वह अवाक् रह गया। उसके मुख से निकला—'अरे तुम!' लेकिन दूसरे पल उसकी दृष्टि अपने साधारण कपड़ों पर गई। उसे क्या पता था कि सुजाता रास्ते में मिल जायगी। वर्ना वह सूट पहन कर निकलता। सुजाता ने बड़े प्रेम के साथ कहा —'आज हुज़ूर किस मूड में हैं। अपनी आसमानी कार कहाँ छोड़ दी?'

—'वह डैडी ले गये हैं। उस रोज़ जिस कार से कनॉट प्लेस गया था वह मेरे दोस्त जगत ने एक दिन के लिए माँग ली है और जिस रोज़ सुरेश के साथ मैं तुमसे जंतर-मंतर में मिला था वह डैडी ने बड़ी सिस्टर को दे दी है। तुम्हें तो वह आसमानी कार बहुत पसंद है जिसमें बैठकर मैं अकसर सुनील के साथ क्लब आया करता हूँ। सुनील भी खूब जौली है कि उसी कार को अपनी बताता फिरता है। खैर, तुम तो जानती हो कि सुनील मेरा जिगरी दोस्त है।'

सुजाता ने मुस्कराते हुए कहा—'छोड़िये भी। यह कार भी तो आपकी ही है। जल्दी से कार में बैठो डियर!'

—'लेकिन···।' आनन्द ने झिझकते हुए कहा।

—'लेकिन···लेकिन क्या?'

—'यही कि मेरे कपड़े···।'

—वाह आनन्द ! मैंने तो अभी तक देखा नहीं। बड़े अच्छे लग रहे हो इन कपड़ों में। आजकल इन कपड़ों की बड़ी इज्ज़त है। पूरे नेता लग रहे हो। फिल्मी अन्दाज़ में मुस्कराते हुए सुजाता ने कार का दरवाज़ा खोला। एक खास अन्दाज़ से ड्राइवर ने आनन्द को सैलूट दिया। आनन्द को दिल ही दिल में हँसी आई। वह सुजाता के साथ बैठ गया। सुजाता की आँखों में एक ममता और करुणा उमड़ आई थी। सुजाता आनन्द के बिल्कुल करीब खिसक आई थी। उसके होठों पर मुस्कान ऐसी लग रही थी जैसे गुलाब की शबनमी पंखुड़ियों पर सुबह की लाली का रंग उभर आया हो। उस मधुर आलोक से उसका हृदय स्पंदित हो उठा। शराब का-सा नशा उसकी चेतना पर छाने लगा। उसके मन में एकबारगी यह ख्याल आया कि यह कार ज़िन्दगी भर चलती रहे। राजमार्ग के इन दोनों यात्रियों की मंजिल कभी न आए ! सुजाता उसके और भी करीब हो गई।

—'आनन्द डियर, एक बात पूछूँ।'

—'हाँ, ज़रूर पूछिए।' उसने जवाब दिया।

—'आपके डैडी क्या हम दोनों के बारे में जानते हैं ?'

—'बहुत अच्छी तरह। मैंने सभी को तुम्हारा फोटो दिखाया था। मम्मी तो तुम पर निछावर हो उठी हैं। मम्मी ने डैडी को दिखाया तो वे बहुत खुश हुए। और जानती हो क्या कहने लगे ?'

—'क्या कहा उन्होंने ?' सुजाता ने बड़ी दिलचस्पी के साथ पूछा।

—'कहने लगे कि बिल्कुल लक्ष्मी है लक्ष्मी ! मैं इन दोनों की शादी के बाद जमींदारी, जायदाद और कारोबार सबसे छुट्टी पालूँगा। बस हरिद्वार चला जाऊँगा। सुजाता तुम्हें मालूम है कि इसी साल पिताजी ने हमारे लिए शिमला में एक कोठी बनवाई है। मेरा तो इरादा है कि पहले हनीमून मनाने काश्मीर जाया जाय, फिर ज़िन्दगी भर तो शिमले में तो रहना ही है। वहाँ की खूबशूरत वादी में हमारा प्यार शबाब-दरशबाब महकता जायेगा।'

—'सच डार्लिंग ? तुम कितने स्वीट हो।, आँखें बंद किये हुए सुजाता ने उसके गले में बाँहें डाल दीं।

आनन्द ने आवेश में आकर सुजाता के जलते हुए अंगारों पर ओंठ

रख दिए ! कार एक ट्रक से टकराते-टकराते बची । सुजाता सचेत हो गई । 'यू ब्लडी फूल !' कहते हुए ड्राइवर को उसने सावधान किया । ड्राइवर भी होश में आकर कार चलाने लगा। सहसा अशोक होटल पर कार धीमी हो गई । ब्रेक लगते ही एक झटके के साथ रुक गई । इस झटके से आनन्द की चेतना को झटका लगा । लेकिन सुजाता के मधुर स्वर ने फिर उसकी चेतना को मदहोश कर दिया । वह सुजाता के पीछे-पीछे होटल की सीढ़ियों पर चढ़ने लगा । अन्दर आकर वह खूबशूरत सूट पहने हुए जोड़ों को देखकर झिझका लेकिन सुजाता ने उसका हाथ पकड़कर कुर्सी पर बिठा दिया और हँसते हुए पूछा—'क्या अभी तक ऐक्सीडेंट के बारे में सोच रहे हो ?'

—'छोड़ो, उस मनहूस ख्याल को ।' आनन्द ने कहा ।

'ओह ! हाँ, सुजाता आई एम सॉरी । सुजाता को क्या पता कि दुर्घटना हो चुकी है । भीषण दुर्घटना । इतने में टेबल न जाने कितनी चीज़ों से भर गई । दोनों अपने टेस्ट की चीज़ें लेने लगे । फिर ह्विस्की के पेग चले !

—'आनन्द !'

—'जी ।'

—'मैं आज बहुत खुश हूँ कि कोई सीमा नहीं । जानते हो क्यों !'

—'जी नहीं ।'

—'अरे इतना भी नहीं जानते ।'

—'हाँ, समझ गया । दूसरे पर अहसान करके खुशी होती है ।'

—'नहीं आनन्द ! देखो मेरी आँखों में क्या है ? किसका अक्स है । और तुम्हारी आँखों में मैं बैठी हुई हूँ । तुमने तो आज मुझे ही छीन लिया ।'

—'सुजाता, कहीं मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा ।' आनन्द ने भावविभोर होकर कहा ।

—'यह सच्चाई है, स्वप्न नहीं । मैं तुम्हारे ही···तुमसे ही···उस दिन हुमायूँ के मकबरे की याद करो । वह चिड़ियाघर की सैर, आनन्द ! मेरे आनन्द !'···

आनन्द के हृदय में अनुभूतियों की गर्मी बहने लगी। उसने पहली बार सुजाता को पूरे सब्र के साथ देखा। उस समय वह उसे एक अप्सरा मालूम दे रही थी। दूज के चाँद के समान उसकी पेशानी चमक रही थी। सुनहरे बाल उसके कन्धों पर इस तरह झूल रहे थे जैसे हिमालय की बर्फीली चट्टान पर सूरज की सुनहरी किरणें फिसल रही हों। उसके गुलाबी गालों पर नीचे का होंठ लाल रंग की स्ट्राबरी के समान सरस दिखाई दे रहा था। थोड़ी देर में बिल आया—२३५-५० पैसे। सुजाता को पर्स खोलते देख आनन्द ने उसका हाथ थाम लिया और अपने कुर्ते की जेब से पर्स निकाला। बड़े रौब के साथ दस रुपये के चौबीस नोट बैरे की प्लेट में डाल दिये। बैरे ने सलाम किया और चला गया। आनन्द ने सिगरेट जलाई। एक गहरा कश लगाया, फिर पंखे की ओर देखने लगा जहाँ सिगरेट का धुआँ परेशान-सा चारों ओर चक्कर लगा रहा था। कितने आवर्त बने और मिटे। सुजाता ने पिक्चर देखने का प्रस्ताव किया। आनन्द को अपने पर्स का ख्याल हो गया। नशा उतरने लगा। आनन्द ने बहुत आवश्यक काम बताकर विवशता प्रकट कर दी। सुजाता रंगीन नशे में न जाने क्या-क्या बकती रही।

—'आनन्द, चलो मैं तुम्हें घर पहुँचा दूँगी।' मुझे मेरा अपना घर तो दिखा दो।'

—'धन्यवाद! समय आने पर।' आनन्द ने मुस्कराते हुए कहा। लेकिन चेतना काम कर रही थी। उसके डैडी की बीमारी···।

—'आनन्द क्या बात है? तुम ख़ामोश क्यों हो गये?'

—'ख़ुशी को बर्दाशत नहीं कर पा रहा।'

—'सच?' सुजाता ने उसके हाथ को चूमते हुए कहा।

—'हाँ सुजाता!'

—'पापा तुम्हें देखने के बड़े उत्सुक हैं। क्या तुम कल उनसे मिल सकोगे?'

—'हाँ ज़रूर। मेरे डैडी भी, गुड इवनिंग।'

—'गुड इवनिंग, ओके डियर! मुस्कराती हुई सुजाता कार में बैठ गई। कार स्टार्ट हुई। आनन्द खड़ा हुआ कार के पहियों को देखने लगा।

उसे महसूस हुआ कि कार के पहिये उसके सीने पर चल रहे हैं। वह सोचने लगा कि वह खुद एक सड़क है—राजमार्ग, जिस पर से ये पहिये गुजरने के बाद न जाने कितने पहिये गुज़र जायेंगे। उसकी आँखों के सामने अंधेरा छा गया जिसमें धीरे-धीरे टिमटिमाता दिया दिखाई दिया जो उसके पिता के शव के सिरहाने अभी-अभी किसी ने रख दिया था। माँ पास ही बेहोश पड़ी थी जिसकी आत्मा एक कबूतर बनकर उड़ती मालूम हुई। उसे न जाने क्या हो गया। उसने उड़ते हुए कबूतर पर चाकू फेंक मारा। पंख घायल हुए और खून से लथ-पथ माँ की लाश दिखाई दी। अरे, ये कौन लोग हैं जो एक स्याह तख्ती को उसके गले में लटका रहे हैं, जिसके हरूफ़ उसे साफ दिखाई दे रहे हैं।

"एक ग़रीब क्लर्क का बेटा। एक अभागा फुटपाथ का यात्री जिसको हक नहीं था राजमार्ग पर चलने का। लेकिन उसने ज़िद की और कार के पहिये के नीचे कुचल गया और माँ का आखिरी ज़ेवर बेचकर भी बीमार बूढ़े बाप की दवा न खरीद सका।"

एक नाम बुझी मुस्कान

उसकी आँखों में एक अजीब सूनापन भरा रहता था। उदासी और ऊब से भरा हुआ चेहरा एक सवालिया निशान बना रहता था। मेरी नज़र बार-बार उसके माथे पर उभरी हुई शिकन के दोनों छोरों से लटक जाती और उसके अन्दर के तनाव को तौलने लगती। उसी समय मेरे अन्दर भी कुछ-कुछ होने लगता। उफ! कैसी बेचैनी महसूस होती थी उसे देखकर। आज भी उसकी पथराई नज़र को अर्थाने में कितना भयंकर पाप खींच रहा है। मेरे पास कोई उपाय भी नहीं सिर्फ इसके कि मैं उधर खिचती चली जाऊँ। मनभाये सन्नाटे को मैं कैसे अजनबी कह दूँ। उसका हर क्षण मेरी रग-रग में समा गया है। मौन को पारदर्शी दर्पण कैसे मान लूँ, वह तो पहाड़ बनकर मेरी आँखों के सामने अड़ गया है। कई बार सम्भावना अंकुरित हुई, लेकिन संकोच के पाले ने उसे मुर्झा दिया।···

मैं स्वेटर बुनते हुए उलझनें सुलझा रही थी कि हरीश ने पीछे से आकर मेरी आँखें अपने हाथों से बन्द कर दीं। हाथों से सलाइयाँ गिर पड़ीं। पहले क्षण लगा कि यह हरीश नहीं है। मैं रोमांचित हो उठी। यह कैसी अप्रत्याशित शरारत थी जिसकी खुशी बटोर कर मैं अपनी झोली भरने लगी। गुदगुदी महसूस करती हुई न जाने क्यों बड़े ज़ोर से खिलखिला पड़ी। उसी उन्माद में मेरे मुख से उसका नाम···निकल पड़ा। हरीश ने चौंकते हुए अपने हाथ हटा लिए। मैंने देखा कि उसके होंठों पर उस नाम ···की स्लिप लटक रही थी।

होंठ हिले, हरीश ने पूछ लिया—'यह किसका नाम ले रही थीं?'

मैंने जवाब दिया—'तुम्हारा और किसका?'

—'मेरा? मेरा तो यह नाम नहीं है?'

मैंने अपने होठों पर मुस्कान चिपकाकर कहा—'मैं तुम्हें प्यार में इस

नाम से पुकारूँ तो तुम्हें कोई आपत्ति तो नहीं ?'

वह मुस्कराया और शरारत के साथ बोला—बताओ मैंने तुम्हारे अंचल में क्या बाँध दिया है ?

मैंने जवाब दिया—दहकता अंगारा।

शायद वह इसका सही अर्थ नहीं समेट सका या इसके लिए उसके पास इतना समय नहीं था। उसने बिल्कुल अप्रत्याशित रूप में हँसते हुए मुझे अपनी बाहों का हार पहना दिया। मेरे शरीर में ज़रा भी सिहरन पैदा नहीं हुई। हैरत के साथ पूछा—

—हम दोनों के बीच क्या है जो इतनी दूर टिक गई हो ?

—सिर्फ खोखला आसमां है या आसमां भी नहीं है।

—क्या तुम अपने आसमां को भटकने दोगी क्योंकि इस आसमां को चीरकर मैं तुम्हें बाहों में भरना चाहता हूँ।

—लेकिन हरीश तुम समझते क्यों नहीं हो ?

—अच्छा तो नौबत अब समझने की आ गई है ? मैंने आज तक तुम्हें समझने की कोशिश नहीं की। केवल विश्वास किया है···।

—विश्वास ? शायद तुमने मुझे सिर्फ चौकलेट या सोफ्टी समझा है, तभी तो तुम्हें समझने की ज़रूरत महसूस नहीं हुई।

—तब तो हम दोनों के बीच कोई बात ज़रूर है।

—अगर तुम बात मालूम करना चाहते हो तो वह एक कड़वी सच्चाई है जिसे तुम निगल नहीं सकोगे। वास्तव में हरीश हमें शादी नहीं करनी चाहिए थी। शादी एक लानत है, एक ग़लत योजना है और जीवन की सबसे बड़ी भूल है। दो व्यक्ति कुतुहलके कारण इस जाल में फँस जाते हैं।

—लेकिन हमारे लिए शादी ऐसा कोई अनुभव तो नहीं है। मैं तुम्हारे साथ रहते हुए कभी नहीं ऊबा। तुममें यह अनुभूति क्यों हुई है ?

—मैं यह बात मानती हूँ कि हममें-तुममें कभी कोई झगड़ा नहीं हुआ। तुम मुझे बहुत चाहते हो और हमेशा फूल की तरह सम्हाल कर रखना चाहते हो। तुम्हारे हमेशा भले बने रहने से हमारे जीवन में कुछ नयापन घटित नहीं होता। हम अपने जीवन में अनुभूतियों की विविधता खो बैठे हैं। मुझे ऐसा लगता है जैसे मैं पिंजड़े में बन्द कोई चिड़िया हूँ जिसकी नीले

आसमान में उड़ने की आज़ादी को छीन लिया गया है।

—तुम्हारे कहने का मतलब है कि विवाहित जीवन में प्रेम मर जाता है और जो कुछ रह जाता है वह सिर्फ रेतीली अनुभूति है ?

—हरीश ! तुम्हारा प्रेम अकेले न बैठ सकने की बीमारी का एक रस्मी इलाज है। तुम बेवफाई के खौलते अनुभव से नहीं जले हो। तुम्हें क्या पता कि अतीत की ओर पीठ किए बग़ैर और भविष्य की ओर लपके बग़ैर विश्वास की धूप कैसे सेंकी जाती है ?

हरीश मौन एकटक मेरे भाव को पढ़ने की चेष्टा करने लगा। मेरे उजाले में शिगाफ पड़ गई जिसके अन्दर से स्मृतियों का एक ताबूत दिखाई देने लगा। मार्च के महीने का गर्म-गर्म एकाग्रता से भरा हुआ दिन। झील के किनारे हलकी-हलकी धूप में पेड़ जैसे ऊँघ रहे थे। मैंने उसके हाथ को पकड़कर सहलाना शुरू कर दिया। पैर लटका कर झील के पानी से खेलने लगी थी। वह भयंकर रूप से मौन था। मैं हाथ जोड़कर उसकी जाँघों पर सर रखकर लेट गई और उसे उस भयंकर मुद्रा से मुक्त किया।...

—तुम खामोश रहने की क़सम खाकर आये हो। कुछ तो कहो। मैं बहुत थक रही हूँ। मुझे संभालो।

—मधु, तुम्हें मैं कैसे समझाऊँ कि ज़िन्दगी इतनी बेमतलब और बेहूदा हो गई है कि यह प्रेम और यहाँ तक कि तुम्हारी दोस्ती भी उसकी ऊब को खत्म नहीं कर पा रही।

—सच कह रहे हो ?

—हाँ-हाँ मधु ! मैं तुम्हें धोखे में नहीं रखना चाहता। मेरे पीछे मेरी पत्नी और दो-दो बच्चों के बर्फीले संशय मेरे अन्दर निरन्तर चुभते पश्चात्तापों को सिहराने लगते हैं। दृष्टि के काँटों में उलझा हुआ दृश्य का कफन तार-तार होकर बेकार उड़ता रहता है और रिक्तता के समुद्र में प्रेम की फूली हुई लाश बहती नज़र आती है।

—लेकिन मैंने तो केवल तुम्हारी मूरत ही मन में गढ़ी है। तुम कुछ भी करो मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकती। मैं बचपन से ही तुम्हारे बारे में सुनती आई हूँ। तुम अच्छे लगे। तुम्हारी कहानियाँ पढ़ीं और होश संभाला तभी से तुम्हारे सम्पर्क में आने की भावना ज़ोर पकड़ने लगी। जब पहली बार मैं

अपनी बड़ी बहन के साथ तुमसे मिली तो मुझे लगा जैसे मैं तुम्हारे पैरों की धूल हूँ और जैसे तुम्हारे लिए ही मेरा जन्म हुआ है। तुम अपने साथ चाहे कितना झगड़ो, अपने को चाहे कितना उखड़ा महसूस करो, मेरी कल्पना में तुम्हीं एक मात्र पुरुष हो। मेरा और तुम्हारा सम्बन्ध नारी-पुरुष का है…।

—तुम क्या पागलपन कर रही हो मधु ! मैं तो अपने ही बौने रूप की छायाओं से डर-डरकर लड़खड़ाने लगता हूँ। तभी मुझे उन लोगों की हत्या करने की इच्छा होने लगती है जो इस संदर्भ में सरल भाषा का प्रयोग करते हैं और एक ही नारी के साथ एक बिस्तर पर जीवन बिताने के पक्ष में हैं।

—लेकिन क्या तुम समय को फिसलते हुए नहीं देख रहे ? समय की नदी को बाँधने की कोशिश करना मूर्खता है, क्योंकि यहाँ एक क्षण की बूंद ठहरती नहीं, तुरंत सूख जाती है।

—तुम बिल्कुल ठीक कहती हो। यह ऐसा सत्य है जिसे मृत्युबोध का कुत्ता अपनी जीभ से नहीं चाट सकता। मैं जीवन को प्रतीक्षा मानता हूँ, मृत्यु नहीं। मृत्यु बंजर भूमि है और जीवन ऊब की फसल। हम एक के बाद अनेक फसलें काटते हैं और आगे की फसलों की प्रतीक्षा करते जाते हैं।

—हाँ, इसी तरह समय फिसल जाता है। ढलान की ओर जहाँ लम्बा-चौड़ा बंजर है।

—कभी-कभी मैं सोचने लगती हूँ कि कहीं हमारी बातें बकवास तो नहीं हैं ?

—लेकिन तुम्हारी बातों का अर्थ और अर्थ में दबी हुई आवाज़ कोई नहीं सुन सकता। तुम्हारे ओवर टोन्स केवल मैं ही सुन सकता हूँ। गूँगी दुनिया को केवल तुम्हारा चेहरा दिखाई देता है और कुछ नहीं। यह चेहरा अजीब-सी धुंध से ढका हुआ है।

—तुम्हारे विश्वास की तेज़ धूप से चेहरे की धुंध साफ होते ही अर्थ का पहाड़ काँपते हुए भुरभुराने लगता है। मुझे डर है कि कहीं वह सुख के दलदल में लैंड स्लाइड न कर जाय।

—ऐसा मैं नहीं होने दूंगी। मैं अपनी दोस्ती को मात्र बकवास कर

सकने का अवसर नहीं मानूंगी। हम इस सीमा को पार कर चुके हैं।···

—मधु, क्या तुम्हें अपनी आवाज़ लड़खड़ाती हुई नहीं महसूस होती ? इस संघर्ष के संगीत को सुनते हुए हमें यथार्थ से काम लेना चाहिए। यदि मैं कहता कि 'मैं तुम्हें सबसे ज्यादा प्यार करता हूँ' तो तुम्हें कितना भयंकर झूठ सुनने को मिलता। इस वाक्य का प्रत्येक शब्द कितना खोखला और सारहीन है। मैं तो अपने को बधाई देता हूँ कि मैंने अभी तक तुम्हारे लिये ऐसा भयानक, निरर्थक और घिसा-पिटा वाक्य नहीं बोला है। क्या इस यातना से तुम्हें नहीं बचाया है···?

क्रोध और प्रतिशोध की भावना से मैंने ताबूत को पैर से परे धकेल दिया और ज़ोर से हँसने लगी। मैं उस समय चौंकी जब हरीश भी उस हँसी में मेरा साथ देने लगा। मैं मौन हो गई, स्तम्भित और दया-भरी दृष्टि से हरीश को देखते हुए गम्भीर हो गई। हरीश ने बच्चे और शरारत-भरी नज़र मेरे चेहरे पर टिका दी। अपनी जेब से निकालकर उसने सोने की खूबसूरत जंजीर मेरे गले में डाल दी। मेरे मुख से निकला—हरीश !

हरीश ने फौरन मुझे टोका—तुम बहुत जल्दी भूल गईं आज अपनी शादी की सालगिरह के दिन जो तुमने मुझे प्यारा नाम··· दिया है। अब तुम्हें आगे उसी नाम से पुकारना चाहिए।

इससे पहले कि मैं उस नाम पर घृणा प्रदर्शित करती उसने बड़े भोलेपन के साथ मुझे अपने आलिंगन-पाश में बाँध लिया। अब मैं पत्थर बनकर नहीं रह सकती, यहाँ तक कि मोम की तरफ पिघलने लगी। मैंने उसे इतना प्यार किया कि सिसकियाँ बँध गईं। इच्छा होने लगी कि हरीश का नाम काक स्क्रू की तरह मेरी आत्मा और मेरे शरीर में घुसता जाय। स्वर की हर लय में गूँजे हरीश जिससे मैं जीवित इतिहास को ताबूत में हमेशा के लिये दफना दूँ।

मैंने बड़े निश्चय के साथ कहा—हरीश डीयर, इस नये नाम को हम दोनों के बीच कभी नहीं आने देना है। तुम भूल जाओ कि मैंने तुम्हें कोई नाम दिया था। नाम मुर्दा है, उसमें दुर्गन्ध आती है।

—मधु डार्लिंग ! क्या मैं विश्वास कर लूं कि अब हम दोनों के बीच भराव हो गया है। एक इंच खाली जगह नहीं ?

—हाँ हरीश, तभी तो मैं तुम्हारे नाम में एक ताज़गी और सुगन्ध महसूस कर रही हूँ···।

—मुझे भी अब जीवन की धड़कनें सुनाई दे रही हैं।

—हाँ, प्यार की जीवित छाया बार-बार हम दोनों के शरीरों को छू जाती है···।

—शायद वही गुनगुना रही है···।

—हरीश, अब तुम मेरे होठों पर की मुस्कान को इतनी जल्दी बुझते हुए नहीं देखोगे।

ऑबलीक के आर-पार

—क्या आप बता सकते हैं कि इस खिड़की से छोटा-सा पहाड़ दिखाई दे रहा है, उसका क्या नाम है ?

—शंकराचार्य ।

—उसके बाद एक लम्बी-सी शृंखला है, उसे क्या कहते हैं ?

--जबरवन के पहाड़ ।

—अच्छा, उसके पार जो ऊँची पर्वत-शृंखला सर उठाये खड़ी है ?

—महादेव की पहाड़ी ।

—अगर मैं शंकराचार्य की पहाड़ी से महादेव की चोटी का आकर्षण अनुभव करने लगूँ और बीच में आपका अस्तित्व ज़बरवन की पहाड़ी के समान महसूस करने लगूँ तो आपको कैसा लगेगा ?

.संजय अवाक् मेरी तरफ देखते रह गये । मेरे जीवन में अनेक युवक आये । शादियों में उनसे मिलना-जुलना भी हुआ । जो भी युवक आये उन्हें मैं प्यार की सस्ती-सी ग़ज़ल समझकर भूल गई । उनमें से कुछ तो फिल्मी हीरो की भौंडी नक़लें करते हुए दिखाई दिए और कुछ दब्बू, शर्मीले और झेंपते-से महसूस हुए। उनमें मौलिक व्यक्तित्व जैसी कोई चीज़ दिखाई नहीं दी। मैंने उन्हें बना-बनाकर छोड़ दिया क्योंकि मेरे हृदय का लगाव उनके छिछोरेपन में सीमित नहीं रह सका। वे अपने असली व्यक्तित्व की ओर ध्यान न देकर प्रायः बाहरी साज-सज्जा पर ही अधिक समय और धन खर्च करते। उनके कनपटी तक सटे हुए सिर के बाल प्रायः कंधे पर टिके रहा करते । मैंने एलीफेंटा और बैल-बॉटम को भी पसंद नहीं किया । मुझे कपड़ों के चुनाव में ग्रेस पसंद थी । एक छात्रा होने के बावजूद भी मेरी रुचि बहुत परिष्कृत थी । मैं १८ वर्ष की युवती थी लेकिन मेरी रुचि चालीस वर्ष की प्रौढ़ा । बीच की अवस्था जैसे

तिरछी रेखा हो जिसके आर-पार मैं और मेरी रुचि थी। इसका यह अर्थ न लीजिए कि मैं विचारों में दकियानूसी थी। बौद्धिकता के धरातल पर मुझे नये और मौलिक विचार बहुत रोचक लगते। नवलेखन की रचनाएँ मैं इतनी उत्सुकता से पढ़ा करती कि मुझे ध्यान भी नहीं रहता कि कितना समय रस बनाकर पी गई हूँ। इसी प्रकार चाय की अपेक्षा कॉफी का फ्लेवर मुझे अधिक विचारोत्तेजक प्रतीत होता।

मेरी सहेलियाँ कहतीं—तुम ग़लत युग में पैदा हो गई हो। इस सीलन और कीचड़ से भरे युग में तुम्हारी दृष्टि अब भी सौन्दर्यवादी है।

तभी मैं जवाब देती—कोई ग़लत युग में पैदा होता है तो कोई ग़लत पैदा होकर सही युग को खो देता है। असली व्यक्तित्व तो वह है जो युग के विरुद्ध पैदा होकर क्रांतिकारी परिवर्तन लाये। अपनी पगडंडी स्वयं बनाये चाहे वह कँटीली झाड़ियों और भयंकर जंगलों से होकर ही क्यों न जाय?

तभी उषा रेडार बन जाती और मेरे विचारों की उड़ान की सूचना देती···।

मुझे विमलजी के ऐसे ही स्वतंत्र विचार बहुत रोचक लगा करते। मेरे अन्दर भी अपना अलग व्यक्तित्व बनाने की इच्छा हिलने-डोलने लगती। विमलजी प्रायः उसके बारे में सोचते जो वे पीछे छोड़कर चले आये थे और मैं तब उसके बारे में सोचा करती जो मेरे साथ-साथ साये के रूप में चल रहा था। मैं अलग-अलग रहने की कोशिश भी करती और प्रतीक्षा भी करती। मेरे लिए प्रतीक्षा की कोई ख़ास वस्तु नहीं थी क्योंकि मैं किसी भी वस्तु को पूरी तरह खो नहीं सकती थी। उस दिन पहलगाम में मैंने संजय से पूछा—कुछ सुन रहे हैं?

—क्या?

—यह आवाज़। यह आवाज़ कैसी है?

—लिदर नदी की आवाज़ है।

—नहीं, यह केवल नदी की ही आवाज़ नहीं है। नदी की आवाज़ से अलग हवा की आवाज़ घुली-मिली है, जिसका स्पर्श एक पल में धूप की गर्मी से थपथपाता है और दूसरे पल में बुझ-सा जाता है।

तभी आँखों के सामने एक धुँधला-सा सूनापन छा गया। एक क्षण में ही महसूस हुआ जैसे अँधेरा गहराने लगा है। तभी अचानक फिर धूप का उजाला उसे पीने लगा। थोड़ी ही दूर पर एक पेड़ के नीचे साया तितली के पंखों की तरह हिलकर चित्रित हो गया···। हवा का एक तेज़ झौंका अबकी बार अकेला ही आया·· मुझे लगा कि यह अपने धक्के से गिरा देगा। संजय ने मुझे संभाला। मैं थोड़ी-सी आश्वस्त हुई और संजय के आग्रह पर मुस्कराने लगी। मेरे होंठ उनके चेहरे से सट गये लेकिन प्यार करने के लिए उत्सुक ही हुए थे कि ठण्डी हवा की एक लहर से ठण्डे होकर जम से गये। यह वही स्थान था जहाँ मैंने विमल के फोटो लेते समय हँसी उड़ाई थी और वह सीरियस हो गये थे।

—संजय डीयर! अब यहाँ से हम चलेंगे। संजय ने बड़े आश्चर्य के साथ मुझे देखा। इधर हवा का झौंका मेरे शरीर में झुरझुरी पैदा करने लगा था। संजय ने मुझे बाहों में कसते हुए कहा—इतनी जल्दी क्यों?

फिर दृढ़ आलिंगन में मुझे बाँध लिया। मैं निर्जीव-सी बँधती चली गयी। संजय का एकांगी प्रवेश था और मैं सोच रही थी उस पुरानी उदासी के बारे में जो बिना चेतावनी के अचानक लौट आई थी। यादों ने पुराने दरवाज़ों पर दस्तक देना शुरू कर दिया था। दरवाज़ा खुला भी लेकिन धुंध के सिवा कुछ न मिला···। तभी अचानक कोई अधिकार के स्वर से खींचने की कोशिश करता है। सिसक-सिसक कर रोने की इच्छा होती है। मेरी देह रह-रहकर हिल उठती है। पहली बार केवल पहली बार उन्होंने अपने पास बैठने के लिए बुलाया था। मैंने भौंहें तानकर विमल का तिरस्कार किया। तब विमल ने विजया से कहलवाया था और मेरी ओर देख कर सीरियस मूड में मौन बैठे रह गये थे। मैंने उनकी खामोशी से मर्म पर आघात महसूस किया और मनुहार के भाव में उनके पैरों के पास आकर बैठ गई···। कई बार उन्हें कनखियों से देखा लेकिन बच्चे की तरह रूठे हुए थे···।

मन का यह दरवाज़ा भी अजीब था कि कोई हाथ खींच रहा हो। उस दरवाज़े के अन्दर वह थकी हुई खिचती चली जा रही है···। उस दरवाज़े को कभी खटखटाया भी नहीं था। आज संजय रूठे थे और वह मना

रही थी ।

विमल जी कहते—जब प्रेम का जीवन आदत बनकर रह जाय तब आत्महत्या ही उससे मुक्त कराने वाला एकमात्र मार्ग रह जाता है। आज हम दिन में कितनी बार इस मृत्यु का सामना करते हैं और आश्चर्य है कि फिर भी जीते हैं।

उषा ने पूछा था—मृत्यु के आगे भी कुछ है सर ?

—हाँ, है एक रोशनी जिसे यादों के चिराग़ फैलाते हैं, जिससे हृदय का कोना-कोना जगमगाने लगता है और बिछुड़ी हुई आत्मा हल्की होकर ऊपर और ऊपर की ओर उड़ने लगती है।

बस खचाखच भरी हुई थी । उषा ने मेरे लिए एक सीट ठीक सर के पीछे रिज़र्व रखी थी। मैंने फर का कोट पहन रखा था। जैसे ही मैंने उन्हें कनखियों से ताकते हुए देखा, उषा ने बड़े ज़ोर से चुटकी भरी, ऐसी ज़ोर से कि मैं कराह कर रह गई। मैं ज़ोर से चीख उठती लेकिन उनका ख्याल करके मैंने सह लिया। अरे, मेरा तो दम ही निकल गया होता क्योंकि ठीक ऐसी ही घबराहट में उन्होंने मुझसे कहा—देखो व्रत के दिन भी सिर्फ तुम्हारी खातिर मैं आया हूँ। मेरे चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं । लज्जा के मारे गाल फड़फड़ाने लगे। मैंने आँखें झुका लीं। कोई जवाब नहीं दे सकी। खैरियत हुई कि उषा ने जवाब दे दिया। इसके बाद वे आगे की ओर देखने लगे। कम्बख्त उषा ने मेरे कान में फुसफुसाया—बधाई स्वीकारो। आज तो तुम्हीं तुम हो किसी की नज़र में। मैंने बनावटी क्रोध के साथ कहा—देख उषा, मैं उठकर पीछे चली जाऊँगी। यह धमकी कारगर सिद्ध हुई।

जब लड़कियाँ गाने लगतीं तो मुझे लगता कि हर एक गाना हम दोनों को लक्ष्य करके गाया जा रहा है। मन में गुदगुदी महसूस होने लगती। इस बीच कई बार उन्होंने मुझे चोरी-चोरी देखा। इसी खेल-खेल में डकसुम आ गया। हम सभी पीली हल्की धूप में उतरे। पहाड़ों पर देवदारु के घने वृक्षों के बीच बर्फ ऐसी बिखरी हुई थी जैसे किसी ने दही के छींटे दिये हों। उन्होंने मुझे देखा और फिर दो पहाड़ों की रेंज में ऑवलीक की तरह लेटे पहाड़ पर नजरें गढ़ा दीं। मैंने महसूस किया कि यह ऑवलीक हम

दोनों के बीच उषा तो नहीं है। क्योंकि थोड़ी देर के बाद एक भूरा बादल बीच के पहाड़ पर उतरने लगा। इधर एक बादल मेरे मन में भी उतरने लगा था। मैं यह सोचकर उदास हो गई···। डाक बंगले के लॉन में धनंजय गिटार बजा रहा था, मैं उसी को सुनने लगी। दूर ढलान पर चंचल अपने दोस्तों का फोटो ले रहा था। सर अभी तक ऑवलीक को देखे जा रहे थे। तन्मय होकर बीच में उषा ने मुझे छेड़ा—जा पूछ के आ, क्या कोई कविता उतर रही है ? मैंने चिढ़कर कहा—तू ही क्यों नहीं पूछ लेती क्योंकि तेरा ही मन बेकाबू हो रहा है।

संजय ने कहा—चलो डाक बंगले से ऊपर की ओर चलते हैं। हम दोनों चले जा रहे थे। मैं आधी संजय के साथ थी और आधी बहुत पीछे। अचानक चौंक गई। कंधे पर रखा हुआ हाथ फिसल गया। सामने वही टीला था। वही टीला पिछली घड़ी बन गया था, जाना-पहचाना-सा। मुझे लगा कि यह टीला पुराने उन क्षणों की छाया है जो मेरी पकड़ में नहीं आ रही हालाँकि मेरे शरीर को चारों तरफ़ से लपेटे हुए हैं···। विजया ने कहा था कि विमल जी की इच्छा है कि इसी टीले पर एक फोटो हो जाय। सचमुच मैं वहीं जड़वत् खड़ी रह गई। वे मेरे साथ सटकर खड़े हो गये। हवा में लचकीली डाली की तरह मेरी देह काँपने लगी। मैं उसका काँपना रोक नहीं पा रही थी। दिल के अन्दर भी मन्द जलती मोमबत्ती की तरह कुछ काँप रहा था···। उनकी देह की गन्ध बार-बार गर्म समय की धुन पर मचलने लगी थी। धमनियों का स्पंदन, साँसों का आना-जाना और रक्त की गति एक धागे की तरह हम दोनों को जोड़ रही थी···। विजया ने कहा—स्माइल प्लीज। तभी विमल चौंके और मुझे भी हँसी आ गई थी। उस दिन उनके साथ खड़े हुए मुझे ऐसा लगा जैसे मैं भारहीन होकर ऊपर उड़ने लगी हूँ। बादलों के ऊपर विचरण करने से जैसे दोनों बाज़ू नम हो गये हों···। फिर इन्द्रधनुष को पकड़कर जैसे झूल रही हूँ···। तभी संजय ने मुझे गिरने से बचा लिया। मैं अब सच-मुच संजय की बाहों में झूलने लगी थी। संजय ने मेरे भयभीत चेहरे को चूम कर आश्वस्त करना चाहा। हम नीचे उतर आये थे। डाक बंगले के सामने बर्फ नहीं थी लेकिन उस दिन तो मेरी सहेलियों ने बर्फ से खूब

खेला था। एक-दूसरे पर बर्फ के गोले फेंकते हुए, बर्फ की होली खेलते हुए मैंने देखा था। मैं उषा से चिढ़ी हुई थी क्योंकि वह विमल जी पर बर्फ के गोले फेंक रही थी। उसके साथ सभी सहेलियाँ भी शामिल थीं। अकेले वे जवाब दे रहे थे कि अचानक पैर फिसला और वे पत्थर पर गिर गये···। होश आने के बाद भी मैंने दूर से उन्हें दया की दृष्टि से देखा। शाम बोझिल हो गई थी।

उन दिनों विशेषकर विमल के कारण मैं जब भी बोलती तो लगता जैसे ग़ज़ल कहने की कोशिश कर रही थी। उठने-बैठने में भी ड्रामायी अन्दाज़ रहता। बाल-धोने, नहाये और हँसी-मज़ाक करने में भी संगीत की लय पैदा करने की कोशिश करती। हाथों की उँगलियाँ कब कहाँ रखने से सितार बज सकता है इसका ज्ञान मुझे मिल चुका था। पैरों को मल-मल कर धोया करती, जिससे एड़ियाँ सैंडिल पहनने से और भी लाल दिखाई दिया करतीं। प्रायः मैंने महसूस किया कि विमल की दृष्टि मेरा पीछा करती हुई एड़ियों पर जमी रहती या फिर पीठ पर लहराती चोटी पर···।

धूपछाँही खेल प्रायः बाज़ार में हुआ करता। उनका अध्यापक कभी-कभी स्वाभिमान के कारण दूरी का ढोंग दिखा देता और विमल जी को तेज़ कदमों आगे खींच ले जाता लेकिन कुछ दूर जाकर विमल जी उसका हाथ छोड़ देते और सामने वाली स्टेशनरी की दुकान पर खड़े हुए मेरी प्रतीक्षा करने लगते। कभी उनकी अनुभवी आयु गलियों की भूल-भूलइयों में खींच ले जाती लेकिन जैसे दो रेखायें किसी एक बिन्दु पर मिल जाती हैं वैसे ही हम भी बहुत भटकने के बाद उस बिन्दु पर मिल ही जाया करते। मुझे यह धूपछाँही खेल बड़ा रोमांचक लगता। उस समय मुझे लगता जैसे दो व्यक्तियों के परे कोई सूक्ष्म भावना मन की अतल गहराई में तान छेड़ रही हो। उसके गूंजते स्वरों में डूबती-उतराती मैं किसी प्रबल धार के साथ विवश बही चली जा रही हूँ। विमल के साथ-साथ उसे महसूस होता जैसे उसमें शरीर कम आत्मा अधिक भारी होती जा रही है।

शादी के दिन भी मैंने विमल को पत्र लिखना चाहा था कि वह थोड़ी देर के लिए ही ज़रूर आये जिससे वह उसे अपनी आत्मा सौंप

दे जो जन्म-जन्मांतर में केवल उन्हीं की रहेगी। संजय उस पवित्र आत्मा को छू भी नहीं सकते। संजय तो उसके शरीर के स्वामी हैं। वे उसे वाहों में भींच सकते हैं। ये होंठ, ये आँखें, ये गाल, ठोढ़ी और वक्ष का भार इत्यादि सभी कुछ संजय को दिया गया है। संजय के द्वारा जब यह शरीर सहलाया, मसला, काटा या गुदगुदाया जाता है तो उसकी कराह को अनसुना किया जाता है। संजय के लिए उस समय शब्दों का कोई महत्व नहीं होता···। क्योंकि शब्द तो अर्थ के पंखों पर उड़ कर आत्मा तक संदेश पहुँचाते हैं लेकिन शरीर तो मिट्टी है केवल मिट्टी जो कभी भी उड़ नहीं सकती। विमलजी के विचार अनुगूंज पैदा करते रहते हैं—"मैं वस्तु के संभोग में विश्वास नहीं करता। संभोग में ऐसा कुछ नहीं जिसे असाधारण की संज्ञा दी जाय। इसका आकर्षण व्यक्ति के आन्तरिक सौन्दर्य में बाधक होता है। संभोग वस्तुगत स्थिति है और प्रेम निजी अस्तित्व की स्थिति है···।"

इन विचारों को सुनकर उस समय मैंने अपना अपमान अनुभव किया था। उसी स्थिति में मेरे अहं को ठेस पहुँची थी···लेकिन आज मुझे लगता है कि मेरे और विमल के बीच ऑवलीक सिर्फ आत्मा है कि मेरे और संजय के बीच ऑवलीक शरीर है, केवल शरीर···।

सलीब पर कटे-फटे साये

—अमित बुरा मत मानना। अब हम दोनों को एक-दूसरे से अलग हो जाना चाहिए। क्या तुमने यह महसूस किया कि हम दोनों का सम्बन्ध अधिक औपचारिक हो गया है। शुरू-शुरू में हम इसके विरुद्ध पागलों की तरह चिल्लाये-चीखे और ड्रामायी अन्दाज़ में डायलॉग भी बोले लेकिन इस ठंडे ठहराव के अतिरिक्त मिला भी क्या ?

—ऐसी बात क्यों सोचती हो ? हम अगर चाहें तो एक खुश और सजी हुई ज़िन्दगी बिता सकते हैं। सिर्फ कोशिश की ज़रूरत है। एक इच्छा, एक संभावना और एक प्रेरणा इस ढीली ज़िन्दगी को करीनेदार बना सकती है।

—अमित इस थके शरीर में अब और अधिक शक्ति नहीं है। हमारा आपसी व्यवहार एक रटा-रटाया डायलॉग हो गया है।

इसके बाद कमरे के आधे-कटे उजाले में पत्नी मौन हो जाती है। कुछ देर बाद अमित ने पूछा—नींद आ रही है ?

—नहीं···मैं सोच रही थी कि तुमने क्या कभी इस दिशा में सोचा है ?

—किस दिशा में ?

—इसी दिशा में कि हम दोनों प्रेतात्माओं की तरह अँधेरे में क्यों भटक रहे हैं ?

कमरे का अँधेरा एक फटे छेददार चिथड़े की तरह फड़फड़ा रहा था। बच्चे सहम कर सो गये थे। उन दोनों ने अपनी कटु-मधुर स्मृतियाँ, सुख, पीड़ा और अधूरा जीवन जो साथ-साथ भोगा था अपने तन-मन से उतार कर फेंक देने की कोशिश की। वे दोनों यथार्थ की नंगी स्थिति में थे। लेकिन बाहर गली के बल्ब की रोशनी की झुर्रियों में खोई हुई स्मृतियाँ

सलवटें बन ही गई थीं।···उस दिन अमित बड़ी उलझन में पड़ गया था। वह पछता रहा था कि उसने सोते हुए सितार पर मिज़राब से क्यों चोट की। अब तक वह अपने में ही सिमटी भोली-सी किशोरी थी लेकिन फंक्शन में जब उसकी दृष्टि उसके चेहरे पर रुक गई तो बड़ी देर तक उसे भोले और मासूम चेहरे पर कोई चंचलता नहीं दिखाई दी। जैसे अमित की आँखें चार हुई वह घबरा गई। अमित ने फिर थोड़ी देर बाद उस तरफ़ देखा। अबकी बार उसकी आँखें मानो प्रतीक्षा ही कर रही थीं। आँखें मिलीं और बड़ी देर तक नज़रों की डोर तनी रही। इसके द्वारा वह थोड़ी देर के लिए अपने परिवार के तनाव को झटक सका था। अमित यह भूल गया कि वह एक प्रोफेसर है और वह भूल गई कि वह एक छात्रा है। इस नये सम्बन्ध का आधार औपनिषदिक ऋषि और विदुषी शिष्या-मार्गी का दृष्टान्त बना लिया गया। लेकिन उसने अमित को एक ऐसे क्षोभ और क्रोध-भरे भाव के साथ वक्र दृष्टि से देखा मानो कह रही हो --प्रोफेसर, आपने क्या गहराई से सोचा है कि आप क्या करने जा रहे हैं? ज़रा औचित्य पर तो विचार कर लीजिए कि आप कितने गहरे खड्ड में गिरेंगे? उसकी नज़र में फिर एक और भाव तैरने लगा, जैसे ध्वनि हुई—सर, आप मुझे क्यों बर्बाद करना चाहते हैं। मैं आपके प्रति श्रद्धा रखती हूँ, प्रेम का भाव नहीं। आप इस ग़लतफ़हमी के शिकार क्यों हो रहे हैं?

अमित ने परीक्षा-केन्द्र में कभी भी किसी परीक्षार्थी को नक़ल करने का मौक़ा नहीं दिया। उसकी प्रतिष्ठा अब तक बनी हुई थी लेकिन उस दिन जब उसने पूछा---'सर, इस प्रश्न का क्या उत्तर होगा?' वह थोड़ी देर तक निर्णय नहीं कर सका कि इस छात्रा के प्रति क्या निर्णय ले। उसके विरुद्ध कार्यवाही करे या न करे। अपने स्वभाव के अनुसार उसने उसे चेतावनी दी लेकिन फिर भी उसने कोई ध्यान नहीं दिया—'सर, थोड़ा-सा ही हिन्ट दे दीजिए।' अबकी बार इस दृष्टि से देखा जैसे कह रही हो —'प्रेम में सब-कुछ उचित होता है!' अमित ने पहली बार अपने ज़मीर को दबाया। उसने हिन्ट दे दिया लेकिन उस रात उसे नींद नहीं आई थी। दूसरे दिन इस विषय में चारों तरफ चर्चायें होने लगी थीं। उसकी सहेली ने कहा—छोड़ो भी अब इन पर तरस खाना चाहिए।

इनकी दशा 'मेरा नाम जोकर' फिल्म के हीरो की-सी है। सहेलियों का फिर अट्टहास !

अमित ने सोचा कि अब वह कभी भी अपनी दुर्बलता नहीं दिखायेगा। लेकिन वह जैसे ही दूर रहने की कोशिश करता वह उतनी ही निकट खिची चली आती। वह चर्चा का विषय बन गया। उसके सामने समस्या थी कि इस स्थिति से कैसे छुटकारा मिले ? एक दिन वह घर की परेशानियों के कारण बहुत थका हुआ महसूस कर रहा था कि उसे बहुत प्यारी गीत की ध्वनि सुनाई दी। कॉमन रूम में कोई गा रही थी। वह खिचा चला गया। देखा कि वह भी बैठी हुई है। उसके जाते ही वह खड़ी हो गई और बाहर जाने को हुई कि उसकी सहेली ने उसे हाथ पकड़ कर रोक लिया। अमित को पता चला कि उसकी पसन्द का यह गीत उसकी फरमाइस पर ही सुनवाया गया है। वह अपनी सहेलियों के झुंड में से छुप-छुपकर अमित को कनखियों से देख रही थी। उस दिन अमित ने तय कर लिया कि वह सब-कुछ कह दे कि वह नयनतारा सहगल की तरह उसे अपना साथी बनाना चाहता है। समाज चाहे कुछ भी कहे या करे। वे दोनों स्वतंत्र होकर भी एक होंगे। जीवन में मौलिकता की संभावना केवल इसी स्थिति में अंकुरित हो सकती है। उसने इसी आशय का एक पत्र लिखकर भेज दिया। प्रतिक्रिया यह हुई कि उसने रिसर्च करने का इरादा ही छोड़ दिया। मधुर भावना स्वप्न बनने से पहले बिखरकर रह गयी। अब तो उसकी सहेलियों ने मज़ाक उड़ाना शुरू कर दिया। दो लड़कियाँ डायलॉग बोलने लगीं—

—क्या आप हमें पत्र नहीं लिखेंगे सर ?

—तुम्हें क्यों लिखें ? हम जिसे चाहेंगे उसे लिखेंगे। तुम क्यों जलती हो ?

—आप जला रहे हैं तो हम जल रहे हैं ?

—तो अपनी किस्मत पर रोओ भी।

—एक बात बताइये कि उसमें ऐसा क्या है जो हममें नहीं है।

—किसमें ?

—नयी नयनतारा में।

—यह तो तुम मेरे दिल से पूछो। वह मेरी कल्पना की प्राण है।

—अच्छा तो सौ साल पहले मुझे तुमसे प्यार था···।

और फिर सारी छात्रायें अट्टहास करके हँस पड़ीं। उस समय उसे अहसास का तमाचा-सा लगा, एक व्यक्तिगत अपमान जिससे यहाँ वह कभी उबर नहीं सकता। वह बुरी तरह हिल गया और बिखरने की दशा में हो गया। उसका मन भीगा हो आया। उसकी इच्छा हुई कि एक बार वह उससे मिलकर पूछ लेता कि पिछला अतीत क्या नाटक था। वह इतनी निष्ठुर कैसे हो गई? वह बुझा-बुझा-सा घर पहुँचा। उसके सामने एक ही मार्ग था। उसने त्याग-पत्र लिखकर भेज दिया। बच्चे शाम को शोर कर रहे थे। उसे देखते ही प्यार से लिपट गये। उसने बच्चों को खूब प्यार किया। फिर नंगी चारपाई पर लेट गया। उसने पत्नी से कहा—एक कप चाय दे दो।

—चाय नहीं अमित दूध पी लो। मैं अभी लाई।

—सर फटा जा रहा है। चाय दे दो।

—चाय नुक्सान करेगी।

—कुछ नहीं होगा। इधर कई महीने से दर्द भी नहीं हुआ है।

पत्नी ने ज्यादा दूध डालकर चाय दे दी। आधे घंटे बाद अचानक उसके पेट में ऐंठता हुआ ऐसिडिटी का दर्द उठा। वह बिलबिला गया। उसने तुरंत डाइवाले की टिकियाँ लीं लेकिन दर्द बना रहा। रात के सन्नाटे में नींद नहीं आ रही थी। पास ही पत्नी के पलंग पर सन्नाटा कराह रहा था। उसने गोलियाँ खा लीं। थोड़ी-सी झपकी लगी। उसे लगा वह एक हाल में बैठा हुआ नाटक देख रहा है। रंगमंच पर अँधेरी गुफ़ा का दृश्य है। धीमे-धीमे मशाल जल रही है। अँधेरी गुफा में सिसकने की आवाज़ आती है। दरवाज़े पर पहरेदार जाग जाता है। आधी रात का घना अंधकार थरथराने लगता है। अँधेरा पहरेदार के भारी पैरों से मानो रौंदा गया हो। तभी एक अट्टहास सुनाई देता है और सिसकता हुआ वातावरण फिर सन्नाटे में जकड़ जाता है। थोड़ी देर में आँखें अँधेरे की अभ्यस्त हो जाती हैं। दिखाई देता है कि वह सलीब पर टँगा हुआ है। दूसरे क्षण वह धीरे-धीरे सलीब से उतरकर आगे बढ़ता है। एक भोला, सीधा

और मासूम चेहरा निष्कलंक-सा । वह एक कठोर और महत्वाकांक्षी चेहरे को देखकर सहमने लगता है । यह दूसरा चेहरा पहले चेहरे की मौलिक रचना है । स्रष्टा पर उसकी रचना हावी हो जाती है । पिता को कला-पुत्र बन्दी बना लेता है। पहरेदार को कभी-कभी तरस आने लगता है लेकिन बग़ावत करने का विचार आते ही शासक कला-पुत्र उसे दंड का भय दिलाता है । रंगमंच पर सुनाई देता है—

—यह पाप है प्रोफेसर ! कितने भोले-भाले चेहरों की खुशियों पर आपने तुषार-पात किया है । आपने कितने लोगों के जीवन में भ्रांति के बीज बोये हैं । भला यह क्रम कब तक चलता रहेगा ?

—तुम मुझे उपदेश मत दो । 'पाप क्या है, पुण्य क्या है ?' मैं सब-कुछ समझता हूँ। सारी सृष्टि मेरी अनुभूति का ही दर्पण है । इसी अनुभूति को बोने के लिए परत दर परत यथार्थ की भूमि उलट-पुलट की जाती है, तभी भावना की खेती हरी-भरी दिखाई देती है ।

—लेकिन यह सरासर अन्याय है । आप स्वयं धोखे के शिकार हो रहे हैं । देखिये आपके माथे पर खिंची हुई शिकनें क्या संकेत दे रही हैं ? आप पसीना-पसीना हुए जा रहे हैं । अरे ! आप तो दर्पण के सामने खड़े हुए काँप रहे हैं ! सचमुच आप घबरा गये हैं ।

—बंद करो यह बकवास ! कला-पुत्र अमर है क्योंकि वह विचारशील है । मैं प्रगतिशील बुद्धिजीवी हूँ । मैं घबराने क्यों लगा ? यह दर्पण मेरा ही बनाया हुआ है । एक युगान्तरकारी व्यक्तित्व भयभीत क्यों होगा ? पिछला दर्पण पिछली पीढ़ी की आहों से धुँधला हो चुआ है । मैंने अब नया दर्पण बना लिया है ।

—लेकिन आप यह मत भूलिये कि आपको जिसने गढ़ा है उसके सुख-दुःख सुनने का उत्तरदायित्व भी आपका ही है । देखिये, आपका रचनाकार इतिहास मासूमियत में सिसक रहा है ।

—इसमें मेरा क्या दोष है ? उसके भाग्य में त्रस्त होना ही लिखा है। उसे बार-बार सलीब पर टंगना है । उसे बार-बार मरना और जीना है। उसे भूत की तरह मेरा पीछा नहीं करना चाहिए ।

—लेकिन आपको कृतज्ञ होकर यह नहीं भूलना चाहिए कि आप जो

कुछ हैं अपने इतिहास की बदौलत हैं। आपका समस्त इतिहास आपके पिता के स्वाभिमानी व्यक्तित्व में है। ये व्रत और पूजा सब-कुछ समाज की आँखों में धूल झोंकने के लिए हैं। आपका दामन दाग़-दाग़ हो गया है, उसी में इस नवोदित अतीत को छुपा लीजिए। देखिए, वह आपकी तरफ़ फरियादी नज़रों से देख रहा है।

—(कलाई को रोकते हुए फिर संयम से काम लेते हुए) इसे मेरे सामने से हटा लो। (भावावेश में) ले जाओ इसे किसी अँधेरे खड्ड में गिरा दो। अगर ऐसा नहीं करोगे तो मुझे ही इसका कत्ल करना पड़ेगा।

—शि श् श् धीरे से बोलिये। आपका सभ्य समाज कहीं सुन न ले। आपकी अब तक की प्रतिष्ठा धूल में मिल जाएगी।

वह थक जाता है। चेहरा लटक जाता है। आँखों के नीचे के हलके गिर जाते हैं। आवेश के कारण वह हाँफने लगता है।

—देखिये वह कौन आ रही है ?

—(आँखें मलते हुए) वह ? अरे ! वह तो धोखा है। उसे मरे तो बहुत साल हो चुके हैं···।

—नहीं, कलाकार नहीं। वह अब भी ज़िन्दा है। वह आपको दुःख-भरी कहानी सुनाने आ रही है। अरे ! वह तो लौटने लगी। शायद वह आपके इस व्यक्तित्व से परिचित नहीं है। आप देख क्या रहे हैं ? अब भी दौड़िये और ममता की भीख माँग लीजिए। शायद वह आपको पहचान कर आपके सर पर अपना वरद हाथ रख दे !

—(वह गिड़गिड़ाने को होता है लेकिन फिर सँभल जाता है) तुम यह भूलते हो कि मैं भी एक पुरुष हूँ। मेरी भी मान-मर्यादा है। मैं स्त्री से ममता की भीख माँग कर अपने को गिरा नहीं सकता हूँ। मैंने हमेशा स्त्री का आदर किया है···।

—लेकिन आप सच्चाई पर पर्दा डाल रहे हैं। आपने अपने जीवन में स्त्री को समझने की कभी कोशिश ही नहीं की। माँ की ममता से वंचित रहने के कारण आपने हमेशा अनुशासन भंग किया है। माँ का दुलार, उसकी झिड़कियाँ और प्यार-भरा अनुशासन न मिलने के कारण आपने स्त्री को दूर से ही देखा है। उसे समझा नहीं। आपका उसके प्रति व्यवहार

अब नार्मल है। ऐसी दशा में अहं को छोड़कर ममता की भीख माँगने में ही आपकी भलाई है। एक नार्मल व्यक्ति के सामने स्त्री समर्पण करती है और एक अननार्मल व्यक्ति से वह समर्पण चाहती है।

—समर्पण ! समर्पण ! समर्पण ! क्या मैंने अपनी पत्नी को अपना सर्वस्व समर्पित नहीं किया है ? क्या समाज में हमारे आदर्श परिवार की चर्चा नहीं होती ? अब तक पत्नी ने मुझे देवता माना है।

—यह कहते-कहते आपका स्वर लड़खड़ाने क्यों लगा ? वैसे इसमें कोई सन्देह नहीं कि आप एक अच्छे अभिनेता हैं। शाम की बात भूल गये क्या ? अब आपका नाटक दूर तक नहीं चल सकता। आपकी पत्नी आपके सभी रहस्य जान चुकी है। अब आप देवता क्या हीरो भी नहीं बन सकते। वैसे भी आज का युग एण्टी-हीरो का है। उस रोज़ की बात याद है ?

—किस दिन की बात ? मुझे कुछ भी याद नहीं है।

—आप बनते क्यों हैं ? मैं बताता हूँ जब आपने साहस बटोर कर उसे टैक्सी में बिठाने का आग्रह किया था। लेकिन आपकी कायरता और बदहवासी के कारण मधुर स्वप्न बालू की तरह बिखर कर रह गया।

—उस रोज़ मैं परेशानियों से बहुत थका हुआ था। मेरा कोई इरादा नहीं था। मैं उसे उसके घर तक छोड़ना चाहता था क्योंकि मैं सब-कुछ बता देना चाहता था, लेकिन उसने मेरी बात ठुकरा दी। मैं बता देना चाहता था कि उसके चेहरे में कोई बीस साल पहले के खोये हुए चेहरे की समानता दिखाई देती है। मैं उस चेहरे को पूजता आया हूँ···।

—फिर झूठ, झूठ के बाद झूठ। यह क्यों नहीं कहते कि उस चेहरे से प्रतिशोध लेना चाहते थे।

—प्रतिशोध की बात मैं नहीं समझा।

—आप क्यों समझेंगे ?

—क्या यह सत्य नहीं है कि इससे पहले भी आपने दो युवतियों के जीवन में क्रांति के बीज बोकर पलायन किया है। क्या यह सत्य नहीं है कि वह मासूम जिसे आप सब-कुछ बता देना चाहते थे आपके व्यवहार को ध्यान से देखने लगी थी। क्या यह सत्य नहीं है कि आप दोनों फिर से धूप-छांही खेल खेलने लगे थे ! क्या यह सत्य नहीं है कि आप उसके साथ दूर

तक गये और पीछा करके लौट आये । अब यह नयनतारा का प्रसंग···।

—अफ़सोस ! तुम यह सब-कुछ नहीं समझ सकते । मुझे मत छेड़ो । मैं बहुत हार चुका हूँ लेकिन इसके बावजूद मैं अब उसके जीवन को विषावत नहीं बनाना चाहता । मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ कि ये सभी चेष्टाएँ अपने से प्रतिशोध लेने की भावना से प्रेरित हुई हैं। मैं चाहता था कि कोई मुझे धोखा दे, कोई मुझे झिड़के, कोई मुझ पर हँसे, कोई व्यंग्य करे और कोई नफ़रत करे । ये सभी बातें मेरे अस्तित्व के टूटकर बिखरने की स्थिति में सहायक होतीं; तभी मेरी संतप्त आत्मा को शांति मिलती ।

—इसका अर्थ है कि पलायन की वृत्ति आपके चरित्र का अंग बन गई है । जीवन-संघर्ष में आपने सदैव पलायन ही किया है ।

—इसका कोई प्रमाण है ?

—इसका प्रमाण उस दिन की आत्म-प्रपीड़न की स्थिति है । जब सत्ताधिकारियों से मार खाकर और इंटरव्यू में असफल होकर आपने अधिक मात्रा में पी ली थी । यह कैसा विद्रोह था ? यह कौन पी रहा था ? जब बार से बाहर आपने उसे देखा और पीछे लग गये । आप स्कूटर से गिर गये । आधी रात तक उसके पैरों की धूल चाटते रहे । खैरियत हुई कि आपके एक दोस्त ने पड़ा हुआ देखा और घर पहुँचा दिया । एक और प्रमाण दूँ ?

—दो, लेकिन परिस्थिति को समझते हुए ।

—वह दिन शायद आपको याद होगा जब वह अपनी सहेलियों के साथ आपके आफिस में आई । उसने आपके साथ पिक्चर देखने का पहला प्रस्ताव रखा था और आपने उसे स्वीकार कर लिया था, लेकिन आप सीधे घर आने का नाटक दिखा गये । आपने भी उसी शो में 'बाबुल' पिक्चर देखी लेकिन उन सबसे छिपकर क्योंकि इससे आपके अहं को सन्तुष्ट होना था । आपकी दृष्टि के सामने वह रहे और उसे पता भी न चले । पिक्चर खत्म होने के बाद आपने टैक्सी की और दूर से उसे छिप-कर मुग्ध भाव से देखा और चल दिये । दूसरे दिन आपने पिक्चर हाल के सभी प्रसंग सुनाकर उसे आश्चर्य में डाल दिया···काया के पीछे छाया का चमत्कार···।

रात का अँधेरा जैसे-तैसे कटा-फटा हिलने लगता है। उसने हाथों से टटोलकर देखा कि वह लिजलिजी घास पर पड़ा हुआ है···कुछ देर बाद पूरब की लाली ने खिड़की की राह झाँका। उसने करवट बदली और आँखें बन्द कीं। सर भारी था। स्वप्न की तरह कई दृश्य गड्ड-मड्ड होने लगे···आँखें खोलकर देखा जैसे पत्नी अभी भी सो रही थी। यूँ भी इतवार के दिन वह देर तक सोती है। उसने सोचा मानो सप्ताह के सभी दिन बेचारी के व्यस्त होते हैं। रोज़ छः बजे उठकर बच्चों को नाश्ता कराके, टिफिन देकर स्कूल भेजती है। उसके लिए शेव का पानी गर्म करके खुद लाती है और खिला-पिला कर उसे रुखसत करती है। शेष दिन घर को संभालने और सजाने में लगा देती है। इतवार को वह छः बजे उठता है। बच्चों को पत्नी के कमरे में नहीं जाने देता कहीं वह उनके शोर से जाग न जाय। जैसे ही वह आठ बजे जाग जाती है उसके गले में बाहें डाल देती है और फिर मुस्कराती हुई सारे घर को एक व्यवस्था में ढाल देती है। नाश्ता कराके घर के दूसरे कामों में एकाग्र चित्त से जुट जाना उसकी सुन्दर आदत है जैसे कविता कर रही हो। दोनों बच्चों के साथ वह भी तीसरा बच्चा है जिसके धुले हुए कपड़ों को बड़े चाव से आइरन किया जाता है। स्नान के लिए पानी गर्म करके बाथरूम में रख दिया जाता है। सबसे पहले उसे नहाने के लिए आदेश मिलता है, फिर बच्चों को खाने, मनोरंजन और सोने का निश्चित समय है। घर के मामले में वह कभी-कभी सलाह ले लेती है। एक दिन वह घर में देर से आया। पिता जी और पत्नी दोनों की आँखों में आँसू भरे थे क्योंकि पिता समझते वह वृद्ध जीवन का सहारा है, पत्नी समझती कि उसकी भावी जीवन-नौका का कर्णधार है। दृश्य बदल जाता है···दर्द की एक कंकड़ी मन में किरकिराने लगती है। आँगन में बच्चे शोर करते हुए आपस में लड़ने लगते हैं···वह अपने बेटे के गाल पर चाँटा जड़ देता है···इसी बीच पिता जी नुकीली बात उछाल देते है—"बड़ा शैतान है।' पत्नी ने उछले हुए वाक्य को लपक लिया—'मार डालो इस अभागे को।' पिता जी फिर शाट लगाते हैं—'तुम्हारी बीवी ने ही बच्चे को बिगाड़ दिया है। प्यार करने का मतलब यह नहीं कि उसे सर पर चढ़ा लो।'

पत्नी आवेश में बिखरने को है। वह ढीला पड़ जाता है। पिताजी अपना होलडोल बाँध रहे हैं। वह उन्हें मना रहा है।···पत्नी पूछ रही है—'बेटा किसका है?' उत्तर मिलता है—'मम्मी का।' यही प्रश्न करने पर बेटी जवाब देती है—'डैडी की।' पत्नी मैके गई हुई है···उसे लगता है घर घना जंगल है···कास्मेटिक को देखकर वह कभी पास और कभी दूर महसूस होती है। खाली पलँग को देखकर उसके जाने का अहसास गहरा जाता है।···वह बिना कपड़े बदले ही भारी तनाव से बिस्तर पर लेट जाता है।···पत्नी के तकिये से मुँह सटाकर लेटने में उसे राहत मिलती है।···पत्नी के लिहाफ़ में उसके शरीर की खुशबू महसूस हुआ करती। उसने करवट बदलने की कोशिश की लेकिन नाकाम···उसे लगा कि घड़ी ने नौ बजाये हैं लेकिन पत्नी उसे अब भी सोती हुई दिखाई देती है। बच्चे दोनों लड़ते हुए उसके पलँग के पास पहुँच रहे हैं। एक-दूसरे की शिकायत कर रहे हैं। उसने आँखें खोलने की कोशिश की···उसे महसूस हुआ कि पत्नी न हिली है, न डुली है और न उठ सकी है···। एक आशंका से वह घबरा गया···। उसकी इच्छा हुई कि वह अपनी प्यारी पत्नी से लिपट जाय और अभागे बच्चों को सीने से भींच ले···। वह उठने की कोशिश में पलँग से नीचे गिर पड़ा···। उसके कानों में पत्नी की चीख सुनाई दी। बच्चे 'डैडी-डैडी' कह कर रोने लगे···। फिर एक पल घना अँधेरा, दूसरे पल फिर उजाला·· पिताजी ने सर पर हाथ रखा है···। ममता-भरी दो आँखें···शायद उसकी माँ की हैं···। फिर अँधेरा और पर्त-दर-पर्त घना अंधेरा जैसे सुरंग हो। उसे कुछ सुनाई नहीं दिया जैसे किसी विराट शून्य ने सारे शब्दों को निगल लिया हो।

लोगों ने दैनिक समाचार-पत्र में पढ़ा—प्रसिद्ध कवि प्रोफेसर अमित ने आतमहत्या कर ली। डॉक्टर की रिपोर्ट के आधार पर मौत नींद की बहुत-सी गोलियाँ खा लेने के कारण बताई जाती है।

···और दरवाजा बंद हो गया

तीन दिन से कोठों में आदर्श दाम्पत्य जीवन निभाया जा रहा है। आनन्द ऑफिस से किसी होटल में न जाकर चाय के समय सीधा घर आता रहा है जहाँ विजया की मुस्कान किसी क्लब की टेबुल पर न बिखर कर अपने पिताजी के सामने की नज़रों को अनुरंजित करती रही है। न रात गये आनन्द रंगरेलियाँ करके लौटा है और न विजया संगीत नाटक अकादमी की महफिलों में चहकी है। न आनन्द पीकर बहका है और न विजया किसी सहेली के साथ होटल की डिनरपार्टी में शामिल हुई है। विजया के पिता अपनी इकलौती बेटी को सारी जायदाद सौंप कर संन्यास ले चुके हैं लेकिन रमता जोगी बहता पानी के रूप में वे दामाद के यहाँ ठीक एक साल के बाद आये हैं। यहाँ इन दोनों के आदर्श दाम्पत्य जीवन को देखकर उनकी आत्मा सन्तुष्ट है। आज वे उन्हें अपने दिल के सभी आशीर्वाद देकर हरिद्वार लौट रहे हैं। उन्हें विदा करने के बाद विजया थोड़ी देर कोठी के दरवाज़े पर खड़ी हुई आँखें फाड कर देखती रहती है···।

ताजी के साथ एक पतला सा युवक आया है···शेव न करने के कारण चेहरा धुंध-भरा लगा···बेटा ये कल से तुम्हें पढ़ाया करेंगे। टेबुल के आर-पार कभी-कभी किताव लेते समय उँगलियों का स्पर्श। गम्भीर चेहरे पर भौंहों में हमेशा बल पड़े रहना···गम्भीरता की मुद्रा को चीरने की इच्छा···उसका दिल पिघला और उस कठोर चेहरे के लिए ममता उमड़ने लगी। एक नारी हृदय के लिए चुनौती। बनाव-सिंगार···। फिर बिल्कुल सादा···। हर दिन हार की तड़पन···एक दिन वह रो पड़ी···आनन्द ने पहली वार उसका स्पर्श किया। उसे रोमांच हुआ···हार जीत बन गई। लगा पार्वती ने अपने शिव को जीत लिया हो। यही दरवाज़ा था जबकि

वह बरेली से दुल्हन बनकर यहीं उतारी गई। उसने शर्माती दुल्हन के रूप में इसी दरवाज़े में प्रवेश किया था। लेकिन आज उसके क़दम इसी दरवाजे के बाहर जड़ हो गये हैं।

उसके साथ वही आनन्द है जिसे उसने अपने हृदय के पवित्र भावों के साथ पति बनाया था···। पहले दिन देर से उठने पर आनन्द ने ही खुद 'वैड टी' बनायी थी। विजया उस समय कितने अफसोस और संकोच से पानी-पानी हो गयी थी। आनन्द ने हिरनी की आँखों की मासूमियत, गोरी-गोरी चाँद की सूरत, काली-काली बल खाती हुई नागिन और न जाने क्या-क्या उसमें देख लिया था। दूसरे दिन उसने उसके बदले में अपने हाथों से टाई बाँधकर आनन्द को क्लब जाने के लिए प्यार-भरा आग्रह किया था। तब उन दोनों को एक-दूसरे की ग़लती में भी खूबसूरती दिखाई देती थी। क्लब में आनन्द की दोस्ती का दायरा बढ़ता गया। वह ऑफिस से सीधा घर आने के बजाय क्लब जाने लगा। चाय के समय आनन्द का इंतजार करने के बजाय विजया अपने दोस्तों के साथ सैर सपाटे करने लगी। सुबह 'वैड टी' तैयार न होने पर विजया का मूड ऑफ तो रात गये उसके लेट आने पर आनन्द का बड़बडाना···।

उसने एक दिन अपनी सहेली के साथ आनन्द को देख लिया। वे शब्द अब भी गूँजते रहते हैं···मैं तुम्हें बहुत चाहती हूँ। आनन्द सचमुच, मैं तुमसे प्यार करती हूँ···।

—तब फिर एक राज़ की बात सुनो सोनिया। जिस औरत ने जितने अधिक लोगों से प्यार किया है मैं उसीसे अधिक प्यार करता हूँ। शायद तुम्हारे बारे में यही सही मालूम होता है···।

—बिल्कुल आनन्द ! तुमने सही समझा है।

—सोनिया, मैं पवित्रता का विरोधी हूँ, मैं उससे घृणा करता हूँ। सैक्स की नैतिकता भी भला कोई नैतिकता है ?

—हाँ भई। नैतिक मूल्य कहाँ हैं ? वे कबके मर चुके हैं। मनुष्य ने ईश्वर को मार डाला है, अब सर्वत्र शून्य है। हमारी समझ में नैतिक मूल्यों का मुलम्मा भी हल्का होकर रंग खो बैठा है।

—आज मैं बहुत खुश हूँ सोनिया। हमारे विचारों में बहुत बड़ा

सत्य है । व्यक्ति में जो व्यभिचारी रूप है उसे मैं आदर देना चाहता हूँ ।

—तब तो तुम्हें खुश होना चाहिए । तुम बहुत लकी हो आनन्द । मैं पूर्णरूप से शारीरिक सम्बन्ध के योग्य हूँ ।

—क्या तुम्हें वह क्रिया पसन्द है···।

—मुझे बहुत पसंद है···बेहद···।

एक क्षण के लिए लगा कि वह एक ऐसी अँधेरी कोठरी में है जहाँ बाहर जाने के लिए कोई दरवाज़ा नहीं है । उसका दिमाग चकराने लगता है । तभी एक गम्भीर निःश्वास निकल पड़ता है । वह अपने विश्वविद्यालय के दिनों के दृश्य देखने लगती है । प्रोफेसर अनिल का उसे भाव-विभोर होकर देखना । अनिल जी की दृष्टि में सौन्दर्य था···। वह पागल हो जाया करती । लिट्रेचर के पीरियड में तो वह मस्ती से झूमने लगती । उसने सुना था कि अनिल जी अपने परिवार से असंतुष्ट नहीं हैं लेकिन वहाँ···सुख नहीं मिलता । उसका हृदय उमड़ आता । कितने सौम्य ! कितने सज्जन जैसे उनके व्यक्तित्व का निर्माण प्रेम के हाथों ही हुआ हो । उनमें उच्छ···नाम के लिए भी नहीं । वह उनकी नज़र में केन्द्र बनी रहती···। शादी से पहले वे मन्दिर के पास मिल गए । वह उन्हें नमस्ते भी न कर सकी थी । जल्दी से मन्दिर में घुस गई । उसने कनखियों से देखा कि अनिल उसके पीछे-पीछे मन्दिर के दरवाज़े के अन्दर तक आये । माँ के साथ होने के कारण वह सहम गई । कनपटी गर्म हो गईं । कानों के निचले भाग में जैसे लौ जल उठी थी···।

बाद में वीना का पत्र आया था । लिखा था—"अनिल जी का चेहरा पीला पड़ गया है । वह केम्पस बहुत कम आने लगे हैं । उतनी रुचि के साथ अब नहीं पढ़ाते । फिर भी छात्र उनके लेक्चर के लिए तरसते हैं···। शायद उन्हें केन्सर हो गया है···।" उसकी आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगते हैं···। आनन्द ज्यादा पीकर बड़बड़ाता है । वह भी अपने को नहीं रोक पाती ।

—कैसी बेशऊर औरत है जो इतनी देर तक सोती रहती है···।

—कैसा बेहूदा है जो इतनी रात गये घर लौटता है, जिसे पराई औरतों के साथ रंगरेलियाँ करते शर्म नहीं आती ।

—जब देखो घर से बाहर रहती है ।

—जब देखो शराब के नशे में चूर रहता है ।

—ज़िन्दगी नरक बना दी है ।

—सोने भी नहीं देता—मुँह से बदबू आती है ।

—जा छिनाल, इसी वक्त मेरे घर से बाहर !

—घर तेरे बाप का है···?

लेकिन आनन्द ने घसीटते हुए उसे बाहर कर दिया । वह आधी रात कहाँ जाये ? क्योंकि कोठी का दरवाज़ा उसके लिए बन्द हो गया था । वह सोनिया के घर चली गई थी । विजया के पिता प्रो० मेहता ने आनन्द को विलायत भेजकर पढ़ाया ही नहीं था बल्कि उसे अपनी बेटी देकर अपनी जायदाद का मालिक भी बनाया था । शराब के नशे में आनन्द ने जो दंड विजया को दिया था, वही नशे के उतर जाने के बाद उसकी आत्मा को कचोटने लगा । तीन दिन के बाद प्रोफेसर मेहता के तार को पाकर वह घबरा गया । प्रो० हरिद्वार से तीन दिन के लिए आ रहे थे । वह विजया को मनाने के लिए चल पड़ा था । विजया अपने पिताजी को दुःख नहीं देना चाहती थी । ··लेकिन आज आनन्द फूट पड़ा—

— विजया, मुझे माफी माँगने का कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि मैं उस हद तक बोर हूँ जिस हद में पहुंचने के बाद आदमी मृत समझा जाता है। मैं शराबी, सनकी और खब्ती हूँ । मैं ज़माने का सताया हुआ था, मैंने तुम्हें सताया है । यह सही है कि मैं किसी के साथ निर्वाह नहीं कर सकता, लेकिन इस समस्या के बारे में हम दोनों सोचने के लिये मजबूर हैं···।

—नहीं आनन्द, अब नाटक और नहीं चल सकता । हमारे समाज में लड़कियों को बिस्तर का इतिहास बनाकर बर्बाद किया जाता है। मुझ इस स्थिति से आज़ाद होने दो ।

—लेकिन विजया, मैं अब बिस्तर का सुख नहीं चाहता । मैं ईश्वर भी नहीं चाहता बल्कि पवित्रता चाहता हूँ जो तुम्हीं दे सकती हो ।

—अच्छा तो तुम दुखी रहने की आज़ादी चाहते हो आनन्द ! वही मैं दे सकती हूँ, क्योंकि मैं अपनी आत्मा प्रो० अनिल को बहुत पहले दे चुकी हूँ ।

—फिर भी यही सब-कुछ मुझे स्वीकार है।

—लेकिन यह दरवाज़ा तो मेरे लिए सदैव के लिये बन्द हो चुका है।

—नहीं वीजो, अब यह सिर्फ तुम्हारे ही लिए नहीं मेरे लिए भी बन्द है। हम दोनों ही निष्कासित हैं। अब तुम दरवाज़े के अन्दर आओ जिससे मैं इसे हमेशा के लिए बन्द कर दूँ।

—आनन्द तुम्हारे हठ करने से कुछ भी तो नयापन नहीं हो सकता है।

—वीजो, सिर्फ एक बार ही सोचो। केवल एक बार, क्योंकि बन्द दरवाज़े में ही तो हम दोनों की सार्थकता है।

—जीवन पूरा अर्थहीन है आनन्द! फिर हम दोनों की सार्थकता कैसी? अभी सार्थकता का स्वप्न तुम्हारा टूटा नहीं? तुम अब भी मोह-भंग के सत्य तक नहीं पहुँच पाये हो।

—हो सकता है कि वह तुम्हारे साथ रहते हुए प्राप्त हो जाय। हालाँकि वह सब-कुछ नहीं चाहता हूँ। केवल टूटे हुए मकान की मरम्मत करना चाहता हूँ।

विजया मौन रही, बहुत देर तक आँखें झुकाये हुए खाली खड़ी रही। ···और फिर दरवाज़ा बन्द हो गया।

कहो कैसी तबियत है ?

आज देश के बहुत बड़े उपन्यासकार की शादी की सालगिरह थी। नगर के सभी बड़े साहित्यकार, फिल्म अभिनेता और अभिनेत्रियों को आमंत्रित किया गया था। कोठी कुछ देर पहले जगमगा रही थी। अब भी चहल-पहल और हंगामे का दृश्य चेतना के बाह्य धरातल पर पैर अड़ाने की कोशिश कर रहा था। खाली कुर्सियों पर रुपहली हँसी और गुलाबी मुस्कानें चिपकाए चेहरे झलक-झलक जाते थे। उन चेहरों की विभिन्न मुद्रायें ग्रौर विभिन्न भंगिमायें अभी तक साफ-साफ सुनाई दे रही थीं। शराब के दौर के समय मोटे-पतले हास्य-व्यंग्य लुंज-पुंज हिस्सा कुमकुमों की रोशनी के साथ बेहूदे रूप में बार-बार भूल जाता था। ड्राइंगरूम में अब सन्नाटा कस गया है। मैं भाभी के हाथ को रोक रहा हूँ—बस भाभी, बस···अब न पिलाइये। देखिये तो बिल्कुल निढाल हो चुके हैं···इन्हें संभालिए।

—अजी छोड़िये भी। सुबह आठ बजे तक ये खुद संभल जायेंगे। उन्होंने बड़ी लापरवाही के साथ कहते हुए सोफे पर लिटा दिया, मुझे दो साल पहले की एक रात याद आती है। दिल को न जाने कैसा-कैसा लगने लगता है···। मैंने स्लीपिंग सूट से अपने जिस्म को लपेटते हुए पूछा था—भई बताओ मैं कहाँ सोऊ ?

तब उसने कहा था—यार इतनी जल्दी सोने की क्या पड़ी हुई है ? अभी तो तुमसे ढेर सारी बातें करनी हैं। तब कहीं सोने का सवाल उठेगा।

—मेरे यार, तुम्हें मालूम नहीं कि मैं कितना थका हुआ हूँ। और मैं जमुहाई लेते हुए उसके ऊपर गिरते-गिरते जैसे-तैसे बचा था, क्योंकि पास की कुर्सी मेरे हाथों में आ गई थी। वह पलँग पर लेटा हुआ अपने नये

उपन्यास की हस्तलिपि को उलट रहा था। वह उसका बेडरूम था और उस कमरे में सिर्फ दो ही बिस्तर थे—पति-पत्नी के। उसने मेरी हालत पर हँसी का हल्का-सा ठहाका मारते हुए स्टूल पर रखी हुई बोतल से अपने गिलास में उँड़ेल ली थी। मेरे गिलास में डालने को ही था कि मैंने उसका हाथ थाम लिया।

ब्लेक नाइट मुझे किक कर चुकी थी फिर भी मैं अपने होश में रहने की कोशिश कर रहा था। खाने के बाद तो व्हिस्की आदमी को पीने लगती है। अत: ज्यादा पीना एक तरह से असभ्यता के दायरे में चले जाना है। हाँ, वह भी रंगीन रात थी जबकि एक पब्लिशर को साथी साहित्यकारों के छोटे मित्र वर्ग ने पार्टी दी थी। होटल में बैठे सभी नवलेखक अपने पीने की डींग मार रहे थे। पब्लिशर बड़ा घुटा-पिटा और सीजंड आदमी था। मंटो के मित्रों में से एक। वह इन मिया-मिट्ठुओं की बातें सुनकर मुस्करा रहा था। व्हिस्की के पेग शुरू हो गये। साथ में कबाब, प्याज और चीज़ पकौड़े, फलों में खीरा और सेब। मेरे कान में पब्लिशर ने धीरे से कहा था—"खीरा ज्यादा खाते चलो"। मैंने वैसा ही किया था। एक नये कवि दुबले-पतले जिनके कंधे पर सलीब का वज़न लदा होने के कारण व्यक्तित्व झुककर दोहरा हो गया था। तीसरे नए आलोचक जो द्वीप की तरह कटकर अकेलेपन का अनुभव कर रहे थे। एक साहित्यकार और थे जिनके चेहरे की मुद्राएँ ऊब की ध्वनि पैदा कर रहीं थीं। जो अस्वीकृत और विद्रोह के अवतार थे। ये सज्जन हर बार खाने वाले लोगों की ओर हिकारत की नज़र से देखते जा रहे थे। साथ ही रोब चिपका रहे थे कि अगर कोई उनको निचोड़े तो जिस्म से केवल व्हिस्की की धारें छूटने लगेंगी। हम सभी ने बराबर-बराबर पैग लिए थे। लेकिन आखिरी पैग ने उन्हीं साहब को सबसे पहले ऐसा किक किया कि वे खाने की टेबुल पर कै करने लगे थे। टेबुल पर सर टिकाकर बैठ गये। बार-बार एक हिचकी और उसका पीछा करती हुई कै की पिचकारी जो उनके सूट को भिगोती हुई गन्दा किये दे रही थी। पार्टी में जो वीभत्स रूप पैदा हो गया था तो भूख भी हिरण हो गई थी। किसका खाना और कैसा खाना। नीचे होटल के पास ही टैक्सी खड़ी थी। लेकिन आउट होने वाले नवलेखक न० २

मित्र को घर पहुँचाने के लिए बस का प्रबन्ध करते फिर रहे थे। टैक्सी वाला पूछ रहा था—'जनाब बस किसलिए चाहिए ?' इसी समय नव-लेखक न० ३ भारी सी गाली देते हुए मारने दौड़ते ही थे कि पास ही गन्दे नाले में छपाक की आवाज़ हुई। अब तो वे मानो झेलम पार कर रहे थे, क्योंकि उन्हें न० २ की पत्नी को दौड़कर लाना था और मित्र की ज़िन्दा लाश को सौंप देना था। न० २ अब सड़क पर लेटते हुए नज़र आ रहे थे। दो नवलेखक बहस कर रहे थे कि सार्त्र उनका बाप था। इसके लिए तर्क चल रहे थे लेकिन लँगड़े तर्क। तीसरे ने इस बहस में थोड़ी सी दिलचस्पी दिखाई और हँसते हुए निष्कर्ष खींचते हुए कहने लगा—"अरे यार, क्यों झगड़ रहे हो ? सार्त्र तुम्हारा बाप नहीं तुम्हारा बाप तो मैं हूँ।"

इतने में ही स्टूल से गिलास गिरा था और कमरे में उसकी आवाज़ मानो दर्द बिखेरती हुई गूँज गई थी। मैंने चौंक कर उसे देखा था। वह अभी तक होश में था। जिस प्रकार वह उपन्यासकार के रूप में मौलिक बना रहा उसी तरह इस समय भी उसकी सत्ता में मौलिकता थी। ऐसी सुन्दर मौलिकता जो आकर्षक ही नहीं बल्कि जाल में फँसाने वाली थी। वैसे चेतना हमेशा एक मौलिक वस्तु ही है। उसने मेरा हाथ पकड़ कर अपनी पत्नी के बिस्तर पर बिठा लिया। मैंने कहा था—'भई यह ठीक नहीं। मैं भाभी के बिस्तर पर नहीं सोऊँगा। वे जब दिल्ली से लौटकर आयेंगी तो बिस्तर की दुर्दशा देखकर दुःखी होंगी।' उसने आग्रह के स्वर में कहा था—'तुम्हें मेरे पास यहीं सोना होगा। सोते-सोते मुझे बातें करने की आदत जो है।' मैंने गुदगुदे बिस्तर में घुसते हुए एक अजीब-सा रोमांच अनुभव किया था। मेरे जिस्म की एक-एक रग अनुभव कर रही थी जैसे गुलाब की पंखुड़ियों से बने हुए लिहाफ में न केवल इत्र की सुगन्ध है बल्कि भाभी के जिस्म की गन्ध भी बसी हुई है। गन्ध जो नाक के रन्ध्रों में मादकता का झोंका उठा रही थी। मेरे मुख से निकल पड़ा था—'भाभी का बिस्तर तो बहुत गर्म है।'

उसने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए कहा था—'गर्म तो था लेकिन मेरे लिए उसमें वह गर्मी नहीं रही।' थोड़ी देर सूना रहने के बाद फिर वह अपने को एक्सपोज़ करने लगा था—'दिल्ली में रहते हुए तुम्हारी

भाभी का यही गर्म बिस्तर मुझे गुनाह के लिए विवश कर देता था। उस समय मुझे होश नहीं रहता था। तुम्हारी भाभी भी तो राजेश को इतना पिला देती, इतना पिला देती कि आखिरकार हम दोनों उसके जिस्म को जैसे-तैसे उठाते और लाश की तरह बिस्तर पर पटक देते। उसे रात भर जकड़ती हुई बेहोशी घेरे रहती। तुम्हारी भाभी मेरा हाथ पकड़कर ले जाती और मैं विवश लाचार सा मन्त्रमुग्ध उसके गर्म बिस्तर में घुस जाता···। लेकिन यार, अब लगता है जैसे मैंने बहुत बड़ी भूल की है। एक ऐसा गुनाह किया है कि चाहे राजेश मुझे माफ भी कर दे लेकिन ईश्वर मुझे कभी भी माफ नहीं करेगा।

—लेकिन तुम तो प्रोग्रेसिव हो, यह ईश्वर कहाँ से आ टपका? मैं प्रश्न तो कर गया लेकिन मुझे बाद में खुद ऐसा लगा जैसे यहाँ इस समय इस प्रश्न की आवश्यकता न थी। थोड़ी देर के बाद वह बहुत गम्भीरता के साथ कहने लगा था—

—मैं बहुत दूर तक सोचता गया हूँ और लगा है कि चेतना के दो धरातल हैं—एक कामनाओं वाला धरातल जो वासना, उद्वेग, सौन्दर्यानुभूति, ज्ञान और आनन्द, शोक आदि को उगाता है। दूसरा तलवर्ती धरातल जो यथार्थ व्यक्तित्व की सृष्टि करते हुए विश्वमयता पैदा करता है। इसी तलवर्ती धरातल पर मुझे लगता है कि जो कुछ है; श्रेष्ठतम है, जो प्रत्येक दिन की मौत से अमृत पाता रहता है। इसी को मैं ईश्वर कहता हूँ और जब मैं ज्यादा पी लेता हूँ तभी यह कम्बखत ईश्वर मुझे दबोच लेता है। सतह पर नहीं तल में और अतल में जहाँ मेरी पुकार स्वयं मेरी पत्नी भी नहीं सुन सकती। कोई नहीं सुन सकता। लेकिन इस दबोचे जाने पर भी मैं दूसरे दिन के लिए उससे थोड़ा-सा अमृत चुरा ही लेता हूँ जिसे पीकर मैं मर-मर कर ही जी रहा हूँ।

—वास्तव में यह मर-मर कर ही जी रहा है। तभी तो···

—क्या कहा आपने?

—कुछ नहीं भाभी।

—कुछ कहा तो था आपने। शायद यही कहा होगा कि आजकल की औरतें भी कैसी होती हैं?

मेरे मुँह से निकल पड़ा—नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। मेरे उत्तर को सुनकर उनका चेहरा खिल उठा। इधर मेरे भीतर एक आग की-सी लपट उठी और पिघलती गर्मी के रूप में बहती-सी मालूम हुई। मैं सोफे पर बैठ गया। मुझे इस अद्वैत एकांत में घबराहट-सी होने लगी। मैंने गिलास उठाया और पीने को ही था कि भाभी ने छीन लिया। मैं देखता रह गया। तब तक भाभी ने बोतल और गिलास दोनों मोज़ेक के फर्श पर दे मारे। अब मैं एक औरत का भयानक-सा चित्र देख रहा था। कितना अन्तर्विरोध था भाभी के व्यवहार में। मानो वह पूरी तरह से बदला लेना चाहती थी—

शराब से ?

नहीं।

उपन्यासकार पति से ?

नहीं।

फिर क्या अपने से ?

शायद।

मुझे उनकी दीवानगी पर तरस आ गया। मुझे रोशनी पीले नायलोन के दुपट्टे की तरह हिलती हुई मालूम हुई। दूसरे क्षण लगा कि भाभी ने मेरा हाथ पकड़ा है और मुझे सहारा देते हुए बैडरूम की तरफ ले जा रही हैं। ···अब कमरे की चौखट के पार···। भाभी का···नरम-नरम···गर्म-गर्म महकता बिस्तर···। मैं लेट गया। फिर ऐसा लगा कि सामने भाभी ने बैठकर खूब पिया और फिर स्विच आफ। अँधेरा छा गया। वे मेरे पास मुझसे लिपट कर रोने लगीं। उनके सुबकने के बुलबुले ध्वनिबिन्दु बनकर मेरे कानों में घुसते हुए फूट-फूट जाते। भावावेश में 'राजेश, राजेश' की फुसफुसाहट अब वे बड़बड़ा रही थीं—'प्यारे राजेश, तुम दूसरी शादी कर लो···मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। मैंने तुम्हें धोखा दिया है। मैं कुलटा हूँ—पापिन हूँ। मुझे सज़ा दो···मेरा गला घोंट दो' और सचमुच मुझे लगा कि उन्होंने मेरे हाथ उठाकर अपने गले पर रख दिए हैं। मैं सोच रहा था कि मित्रघात करने वाले हर आदमी के लिए यही ठीक सज़ा है।

अचानक मेरे हाथ गर्दन के चारों ओर संडासी की तरह कड़े होते गये···कड़े होते गये जब तक कि दिमाग़ में एक झटका-सा लगा और जकड़ता हुआ सन्नाटा छा गया।···

सुबह जब होश आया तो ड्राइंगरूम के सोफे पर बैठी मेरे सामने भाभी मुस्कराती हुई पूछ रही थीं—"कहो कैसी तबीयत है ?"

भाभी सचमुच उस समय दो चेहरे वाली नागिन की तरह लगी थीं मुझे।

भारत माँ के लाल

'प्यारे नसीम ! खामोश क्यों हो ?'

'नहीं, सलमा !'

'अच्छा समझी !' सलमा ने नसीम की आँखों में आँखें डालते हुए कहा—'जनाव को मेरी जुदाई के अहसास ने इतना खामोश कर दिया है। लेकिन भई ! मुझे कोई जिन या देव उठा के नहीं ले जायेगा। यक़ीन करो, पाकिस्तान में अब्बा जी के पास बाहिफाज़त रहूँगी। कुछ दिनों के बाद तुम भी पाकिस्तान आ जाना। वहाँ कराची के वे होटल, सड़क की झिलमिलाती रोशनी वाली शामें, समंदर की लहरों के साथ दौड़ लगाने वाली हवस और हज़ारों ऐसे ही रंगीन नज़ारे !'

'सलमा, तुम नहीं समझ सकतीं'—नसीम ने बड़ी संजीदगी के साथ कहा—'तुम जा रही हो, इसका अहसास तो दिल कर ही रहा है। लेकिन उसके बारे में इतनी फिक्र नहीं, क्योंकि तुम कहीं भी रहो, हमें अपनी मुहब्बत पर पूरा यक़ीन है। लेकिन सलमा, एक ऐसा अहसास जो मेरे दिलोदिमाग पर छा गया है, उससे मैं बहुत ज्यादा परेशान हूँ।'

'वह कौन-सा अहसास है नसीम ?'

'क्या करोगी उसे जानकर !' बड़ी मायूसी के साथ नसीम ने कहा।

'वह तुम्हें बताना ही होगा नसीम ! तुम मेरे होने वाले शौहर हो··· अगर तुम्हारे दिल में कोई ऐसी बात···'

'ऐसी कोई बात नहीं, सलमा, खुदा जानता है कि तुम्हीं मेरे दिल में ऐसी जगमगाती हो जैसे चाँदनी।'

'फिर कौन-सा अहसास है सरताजे मन सलामत ! सलमा ने बड़े शरारत-अंगेज़ लहजे में पूछा।

नसीम ने जवाब दिया—'वह अहसास है वतन की मुहब्बत का जिसके

लिए मैं हर प्यारी-से-प्यारी चीज़ को कुर्बान कर सकता हूँ। मैंने कई दिन पहले फौज़ में भर्ती होने के लिए दरख्वास्त भेज दी है।'

'यह क्या किया तुमने नसीम ?'

'ठीक ही किया सलमा ! तुम खुदा से दुआ करना। जंग में मेरा एक-एक क़दम दुश्मन को सौ-सौ क़दम पीछे हटाता जाय। मेरी दहाड़ गीदड़ चीनियों के छक्के छुड़ा दे। दुश्मन के दाँत खट्टे कर सकूँ और ज़रूरत पड़े तो खून की आख़िरी बूंद से भारत माँ की चुनरी को रंग सकूँ।...अरे यह क्या तुम रोने लगीं। पगली ! तुम्हें खुशी मनानी चाहिए कि तुम्हारा होने वाला शौहर बुज़दिल नहीं है। किसी भी दुश्मन को तुम्हारा पाक-दामन नहीं छूने देगा। वह डल झील की सतह पर तुम्हारे साथ सैर कर सकता है, निशात शालीमार और चश्माशाही की बहारों में गुनगुना सकता है तो पत्थर जैसे फौलादी सीने से दुश्मन को टक्कर देकर चूर-चूर कर सकता है। भारत के जवानों की यही दुहरी शख्सियत है।'

'लेकिन नसीम ! अब्बा जी फरमाते हैं कि भारत के मुसलमानों पर जुल्म ढाया जाता है। इसलिए मुसलमानों को वफ़ादार बनने की क्या ज़रूरत है ?'

'माफ़ करो सलमा ! तुम्हारे अब्बा जी से क़तई मुत्तफिक नहीं हूँ। भारत में होने वाले झगड़े-फिसाद भाई-भाई में होने वाले झगड़े-फिसाद हैं जो कभी ख़त्म नहीं होंगे। इतना बड़ा देश है इसलिए अन्दरूनी झगड़ों का होना कोई ताज्जुब की बात नहीं। लेकिन जब बाहर का कोई भी शख्स आँखें दिखायेगा तो हम घरेलू झगड़े छोड़कर पहले बाहर वाले से निपट लेना ठीक समझेंगे।'

'लेकिन नसीम ! अब्बा जी का कहना भी बिलकुल ग़लत नहीं।'

'सलमा, हर सच्चाई के कई पहलू होते हैं। अब्बा जी तंगदिली से सोचते हैं और सिर्फ एक ही पहलू को देखने की ज़िद्द है उनकी। इसी वजह से झगड़े-फिसाद होते हैं।'

'नसीम ? तुम मेरे अब्बा जी की शान के खिलाफ़ कुछ नहीं कह सकते। मुझे जो चाहो कह लो।'

'लेकिन सलमा ! मुझे ऐसे लोगों से सख्त नफ़रत है, जिन्होंने भारत

का नमक खाया है और उनकी रगों में सफ़ेद खून…।'

'नसीम…।'

'हाँ, सलमा…।'

'नसीम ! शिकारा किनारे से लगवा दो, नहीं तो मैं झील में कूद पड़ूँगी।'

'नसीम ने हाँजी से इशारा किया। शिकारा धीरे-धीरे किनारे की ओर चलने लगा। दोनों खामोश थे। अँधेरी रात थी। शिकारे वाले की हिलती हुई लालटेन से निकल कर रोशनी भील की सतह पर काँप रही थी। और हज़ारों टुकड़ों में बिखरती नज़र आ रही थी। शायद यही हालत उन दोनों के दिलों की भी थी।

शिकारा धीरे-धीरे नेहरू पार्क से आ लगा। वहाँ उन दोनों ने ठंडी साँस ली। शिकारा धीरे-धीरे फिर किनारे की ओर बढ़ने लगा। बाहर से देखने वाले को यह अन्दाजा होता जैसे दोनों की ज़िन्दगी एक होकर एक ही शिकारे में चल रही है। लेकिन इन दोनों को अन्दर से अपनी ज़िन्दगी एक ही शिकारे की छत के नीचे अलग-अलग-सी चलती हुई महसूस हो रही थी। यह दुनिया भी तो एक ऐसा ही शिकारा है जहाँ मुख्तलिफ़ देशों की ज़िन्दगी एक ही आसमाँ के नीचे एक-सी मालूम देती है। लेकिन ताज्जुब है अन्दर से वह कितने टुकड़ों में बँटी हुई महसूस करती है। काश ! सारी दुनिया के लोग प्रेम से एक ही शिकारे में बैठकर शान्ति के साथ जीवन-यात्रा को तय कर लेते। तब तो इतना रक्तपात न होता। इन्सान जंगली भेड़िया न होता।

बाहर घना अंधकार था। उल्लुओं की आवाज़ें चिमगादड़ों की चीं-चीं की ध्वनियों में मिलकर बड़ी भयानक मालूम हो रही थीं। कहीं-कहीं गीदड़ और लोमड़ी आदि भी रोते-चीखते सुनाई दे रहे थे। सूबेदार राजेन्द्रसिंह की फौजी टुकड़ी अपने खेमों के अन्दर लेटी हुई थी। वे सो नहीं सकते थे क्योंकि कभी भी मार्च का ऑर्डर मिल सकता था। सूबेदार नसीम और राजेन्द्र पास-पास लेटे हुए थे। नसीम ने कहा—

'तुम थोड़ी देर सो लो मैं जागता रहूँगा।'

'नसीम भाई, आज मुझे नींद नहीं आ सकती वह तो···।'

'अच्छा भाभी की याद ने चुरा ली है। हाँ राजू ! भाभी का खत भी तो आया है न ! क्या लिखा है ?'

राजू ने मुस्कराते हुए खत निकाला जिसमें उसकी पत्नी ने राजपूती आन का ध्यान दिलाया है। राजपूत टूट सकता है, झुक नहीं सकता। मर सकता है पीछे हट नहीं सकता। सीने पर गोली सह सकता है, शत्रु को पीठ नहीं दे सकता। उसके बाद उसने लिखा है, 'मैंने सारा ज़ेवर राष्ट्रीय रक्षा कोश में दान दे दिया है क्योंकि नारी का असली ज़ेवर तो उसका पति है। इन धातु के बेजान टुकड़ों से उसे क्या लगाव ? पति का सिंदूर ही उसका सुहाग है।'

खत सुनकर नसीम का गला भर आया। आँखों में भाभी के लिए श्रद्धा छलछला आई। क्षण भर के लिए उसने सोचा। काश ! मेरी भी सलमा ऐसे दो शब्द लिख देती···।

राजू ने नसीम को छेड़ते हुए कहा—

'नसीम भाई जंग के बाद तुम भी शादी कर लेना। नारी शक्तिस्वरूपा है। उससे बड़ी ताक़त मिलती है।'

'किससे राजू ?'

'उसी से जिसको तुम याद करते रहते हो।'

'मेरी शादी तो मौत से होगी भैया।'

'नसीम भाई, ऐसा न कहो। जहाँ पर तुम्हारा पसीना बहेगा वहाँ पर तुम मेरे खून का उबाल देखना। मुझे जिन्दगी भर तुम्हारा अहसान याद रहेगा। चीन की लड़ाई में तुमने जिस दिलेरी के साथ ठीक समय पर आकर चीनियों के चंगुल से मुझे छुड़ाया था। प्राणों को खतरे में डाल कर मुझे अपने घायल शरीर से रक्त दान दिया था। राजपूत किसी के उपकार को नहीं भूल सकता। और अब इस पाकिस्तान की लड़ाई में अपने राजू के कारनामे देखना।

'राजू तुम बहुत प्यारे दोस्त हो। ऐसा ही जोश होना चाहिए। सुना है कि कल भाई हमीद ने अकेले ही पैटन टैंक पीट दिये। बहादुरी की यह मिसाल कहीं नहीं मिलेगी। भाई पूरनसिंह ने स्यालकोट में सिर्फ दस

सिपाहियों के साथ दो चौकियों पर कब्ज़ा किया है। दो टैंक भी हाथ लगे हैं।'

इतने में ही पास एक धमाका हुआ। जवानों ने पोज़ीशन ले ली। दोनों तरफ से धमाके होने लगे। इस अचानक हमले से भारतीय फौज का एक के बाद दूसरा जवान शहीद होता गया। नसीम और राजेन्द्र डटकर सामना कर रहे थे। लगातार चार घंटे जंग होती रही। सूरज निकल आया। केवल यही दो जवाब दे रहे थे। पाकिस्तानियों ने इन्हें घेरे में लेने की कोशिश की। लेकिन इतने में ही पाकिस्तानी टैंक के गोलों का रुख अचानक बदल गया। गोले घेरे में डालने वाली टुकड़ी पर पड़ने लगे। एक के बाद दुश्मन का दूसरा सिपाही धराशायी होता गया। इधर नसीम और राजेन्द्र के अचूक निशानों ने पाकिस्तानियों में भगदड़ मचा दी। भागते हुए पाकिस्तानियों ने पैटन टैंक के चालक को निशाना बनाया। वह अचानक एक गोली का शिकार बना और ज़मीन पर ढुलक गया। इतने में भारतीय फौज के बहुत-से दस्ते आ चुके थे। नसीम और राजेन्द्र ने पैटन टैंक के चालक को जब ढुलकता देखा तभी अनुमान कर लिया था कि वह जरूर कोई भारतीय वीर है। पास पहुँचकर जैसे ही नसीम ने उसके चेहरे को देखा तो 'सलमा-सलमा' की चीख से सारा लाहौर सैक्टर-गूँज उठा। नसीम की आँख में एक भी आँसू नहीं था। उसके हाथ में सलमा का रूमाल था। उसकी आँखों में खून भर आया था। वह बड़ा भयानक दिखाई दे रहा था। मानो सारे संसार को अपनी आग से जला कर राख कर देगा। राजेन्द्र और सभी जवानों ने सम्मान के साथ उस देवी को दफना दिया। नसीम को राजेन्द्र ने अपने खेमे में ही सुलाया।

अँधेरी रात। दो बजे का समय। गश्त देने वाले सिपाहियों ने एक व्यक्ति को टोका—

'कौन ?'

'सूबेदार नं० ७२४।'

'क्या है सर ?'

'ज़रा मुझे बाहर जाने दो।'

'सर, ऐसा नहीं हो सकता, सी० ओ० साहब का हुक्म है।'

वह विवश होकर लौट आया फिर दूसरी तरफ गया। वहाँ भी रोका गया। लेकिन उसने गश्त लगाने वाले सिपाही को कुछ कागज़ का टुकड़ा दिखाया और कान में कोई बात कही। फिर वह अंधकार में विलीन हो गया। वह रेंगता हुआ चला जा रहा था। इतने में दुश्मन की ओर से सर्च-लाइट पड़ी। वह ज़मीन से सट गया। टार्च का प्रकाश दुबारा आया और उसके साथ एक गोली भी। गोली कमर में लगी। उसने हाथ ऊपर कर दिये। पाकिस्तानी कैद करने आ गया। लेकिन जैसे ही वह पकड़ने बढ़ा वैसे ही उसने संगीन उसके पेट में भौंक दी। पाकिस्तानी सिपाही की वर्दी पहन कर वह पहरा देने लगा। पास ही पाकिस्तानियों का शस्त्रागार था। वह उसकी ओर बढ़ा और दूर से एक बम्ब फेंक कर वापस अपने कैम्प की ओर भाग आया। दूर भारतीय फौज ने पाकिस्तानी चौकी को आग की लपटों से घिरा पाया।

इधर दूसरे दिन हम सभी ने रेडियो पर सुना कि लाहौर की हवाई फिज़ा हमारे अधिकार में है और उधर राजेन्द्रसिंह के सब फौजी जवान भारत माँ के लाल सलमा और नसीम की कब्र पर आँखों में आँसू भरे हुए श्रद्धा के फूल चढ़ा रहे थे।

एक बार फिर

हम जो हर नये से विरोध करने लगते हैं और सत्य से कतराते दिखाई देते हैं; प्राय: उन प्रश्नों को अनसुना कर देते हैं जो कटु और नुकीले होते हैं वही प्रशन और स्थितियाँ अचानक हमें घेर लेती हैं। तब हम विवश होकर उस भाव-सत्य से अलग हो जाते हैं जिससे अब तक जुड़े हुए और चिपटे हुए थे। ऐसी ही स्थिति में आज फिर मुझे पड़ना अवश्यंभावी हो गया था।

बात यों हुई कि मैं पत्नी के साथ बहुत दिनों के बाद सिनेमा देखने गया हुआ था। सिनेमाघर में बड़ी भीड़ थी। सभी लोगों की कुर्सियाँ इतनी सटी हुई थीं कि एक दूसरे से जुड़े मालूम देते थे। ये सभी भीड़ में खोये लोग प्रतीत हो रहे थे। यह उदाहरण है हमारे वर्तमान समाज का। जैसे सिनेमाघर में सभी धर्मों-कर्मों के लोग एक साथ बैठे भीड़ में खो गये हैं और भौतिक रूप से क़रीब हो रहे हैं वैसे ही हम दोनों पति-पत्नी भी करीब होते हुए मानसिक तौर पर दूर फासले में दो छोरों पर थे। ऐसा ही एक जोड़ा मेरी सीट के सामने बैठा हुआ था। पत्नी की आधी खुली पीठ कुछ परिचित-सी प्रतीत हुई। जूड़े के पिन ! अरे ये तो मैंने ही खरीदे थे। तो क्या यह वह है ?

बीच पिक्चर में पत्नी ने मेरे हाथ पर हाथ रख दिया लेकिन मेरे हाथ ठंडे थे, अत: उसने हाथ हटा लिए। पिक्चर समाप्त होने के बाद मैंने जल्दी से कोशिश की कि उससे और उसके पति से भेंट की जाय। लेकिन उसने मुझे आता हुआ देखकर नजरें दूसरी ओर कर लीं। जल्दी से वह पति का हाथ थामे हुए बाहर निकल गई। मैं पत्नी के साथ खड़ा स्तम्भित रह गया। एक फिल्म समाप्त हो गई थी तो दूसरी चलने लगी थी···।

—'क्या सोच रही हो ?'

—'कुछ भी नहीं।'

—'कुछ तो है जिसकी परदादारी है।'

—'हर घड़ी हर लमहा दर्द के मोती पिरोना यही रह गया है अपना सब-कुछ!'

—'लेकिन फिर भी तुम बहुत खुशनसीब हो क्योंकि तुम कुछ तो करने की स्थिति में हो। कुछ लोगों के नसीब में तो निर्णय्र लेना भी मयस्सर नहीं। वे बेचारे दिशाहीन भटकते रहते हैं। तुम्हें कम-से-कम कोई राहत देने वाला हमदर्द तो मिला है।'

—'यह सब अर्थहीन हमदर्दी हैं क्योंकि मेरे हमदर्द के आसपास इतनी राहें बिछी हुई हैं कि वह न जाने किस राह के मोड़ पर जाकर खो जाये! यह सहारा भी क्या सहारा है? हर मोड़ पर एक सवालिया निशान बना रह जाता है कि जाने वाला कहाँ गया? हालाँकि यह जरूरी नहीं है कि मोड़ का अर्थ अस्तित्व का विलय ही लिया जाय।'

—'तुम ठीक कहती हो क्योंकि मुझे भी अपने चारों ओर राहों से गर्द उठती नज़र आती है। दूर इस हिल टाप से वह जो गर्द और धुएँ की आरी-जैसी बन गई है उसने बंड के चिनारों की गर्दन काटने का इरादा बना लिया है। आरी तो कुछ भी नहीं कर सकती लेकिन उस धुएँ और कोहरे की आरी को जो नामालूम हाथ चलाएँगे उन्हीं का महत्व है। इधर यह हिल टाप स्वयं मसीहा का सर है जिसके गले में आरपार जाती हुई और क्रास बनाती हुई सड़कें पड़ी हुई हैं।'

—'इसका अर्थ तो यह हुआ कि मेरा हमदर्द स्वयं सूली पर अपनी ज़िंदगी को टाँगे हुए है, तो वह किसी दूसरे के आस-पास की उदासी को तमाम उम्र भी पार नहीं कर सकता क्योंकि वह हर दिन अपनी ज़िंदगी को सूली से उतारेगा और फिर ज़माना उसे हर रोज़ सूली पर चढ़ायेगा। यह अंतहीन सिलसिला ही तो आसपास की उदासी का नतीजा है।'

इसी बीच अनामिका बोल उठी। 'तुम लोग पता नहीं कविता में ही बोलने के आदी हो गये हो। ये खोखले रोमानी वाक्य मुझे बिल्कुल अच्छे नहीं लगते। कविता की भाषा एक दम बुजदिलों की भाषा है। साहस है तो प्रोजेइक बनो। मेरी तरह। मैं तो साफ बोलती हूँ। तुम लोगों

में साफ बोलने का साहस ही नहीं है ।'

हम उसकी बेवाक बातों को सुनकर हँस पड़े, वह कहने लगी—'इस कल्पना पर तो मुझे बड़ा गुस्सा आता है । जब देखो तभी 'सर' से उलझी पड़ी है एक दार्शनिक की तरह । इसे हो क्या गया है?'

—सुनोगी अनामिका ? मैं बताता हूँ। इसकी शादी अक्तूबर या नवम्बर में हो जाएगी और तभी इसकी यह दार्शनिकता भी रफूचक्कर हो जाएगी ।'

—'छोड़िये सर ! शादी से कुछ भी नहीं बदलने वाला। शादी तो कोई मौलिक अनुभव नहीं है । यह एक परम्परामात्र है सो मैं भी निभा-लूँगी । जैसे आपने निभाई है । लेकिन मैं जीवन में कुछ मौलिक करना चाहती हूँ । उसमें आपके सहयोग की आवश्यकता है । आप क्या मुझे वह सहयोग दे सकते हैं ।'

—'क्यों नहीं । तुम सहयोग माँगो और मैं न दूँ ऐसा कैसे हो सकता है?' यह बात मैं कह तो गया लेकिन मुझे उसके तुरंत बाद ऐसा महसूस हुआ कि इस बार मैं उसकी आँखों में सहज रूप से नहीं झाँक सका। डूबते सूरज की ओर देखने लगा । लेकिन जैसे ही कल्पना ने आँखों में आँखें डालकर मुझसे आगे बातें करना शुरू किया तो मैं अपनी आँखों को हँसमुख बनाने की असफल चेष्टा करने लगा । वह बोली—

'मुझे एक ऐसा दोस्त चाहिए जो मेरी आवश्यकताओं को समझे और साहस के साथ मुझे मेरी सीमाओं का अससास करा सके । क्या वह सहयोग आप दे सकते हैं ?'

इतने में ही अनामिका बोल उठी—

'मेरी यह समझ में नहीं आता कि हम तीनों एक दूसरे से क्या चाहते हैं और क्यों चाहते हैं । मैं तो सर से सीधा सवाल करना चाहती हूँ ।'

—'हाँ, हाँ, करो सवाल, मैं उत्तर देने लिए तैयार बैठा हूँ ।'

—'यह बताइये कि हम दोनों में से आप किसके साथ क्या सम्बन्ध मानते हैं ? आप साहस दिखाते हुए जवाब दीजिए । उसमें बनावटीपन नहीं होना चाहिए ।'

—'तुम सहन कर सकोगी ? कहीं सुनकर तुम्हें आपत्ति न हो ।'

—'हम आप जैसे डरपोक नहीं हैं जो कहने-सुनने का साहस न रखें।'

—'तो सुनो। मुझे तुम्हारे सम्पर्क में रहने से सुख मिलता है और कल्पना के साथ बात-चीत करने में वह मिल जाता है जो वर्षों के सम्पर्क में भी नहीं मिलता।'

—'धत्तेरे की। यह भी कोई साहस की बात हुई? खोदा पहाड़ निकली चुहिया। आप तो यथार्थ से भागते दिखाई देते हैं।'

इसी बीच कल्पना ने थोड़ी देर मौन रहने के पश्चात् निस्तेज चेहरे को मेरी ओर मोड़ा। आँखों में आँखें डालीं जरूर, लेकिन वहाँ वह मुस्कान की चमक नहीं थी। वह कुछ गम्भीर-सी दिखने लगी। उसकी इस गम्भीरता को देखकर मैं सहम गया। थोड़ी देर कमरे में सन्नाटा भर गया। अचानक कल्पना ने पूछा—

'आपने अभी-अभी जो सम्बन्धों का स्पष्टीकरण किया उसका आधार क्या है, यदि आधार है भी तो प्रमाण क्या है?'

—'प्रमाण जानना चाहोगी? क्या यह हर लमहा जिसको हम तीनों सार्थक रूप में जी रहे हैं प्रमाण के लिए काफी नहीं है।'

—'मैं तो अपने बारे में स्पष्टीकरण करना चाहती हूँ। क्या आप बता सकते हैं कि आपको ऐसा अनुभव कब से हुआ?'

—'जब से मैंने तुम्हें पहली बार देखा। मुझे याद है कि आज से तीन वर्ष पहले तुम हरे प्रिंट के सूट में आई थीं। तुम्हारे साथ पहले दिन जो बातें हुईं वह कोई विशेष नहीं थीं बल्कि बहुत ही सामान्य किस्म की थीं। लेकिन मुझे लगा कि कई साल के बाद मेरा आस-पास का खाली माहौल भरने लगेगा। और ऐसा हुआ भी। बीच-बीच में मैं तुम्हें जब एक लड़के से बातें करते देखा करता तो बिना काम के ही तुम दोनों को डिस्टर्ब करने पहुँच जाता। वह मेरे आने के बाद थोड़ी ही देर में खिसक जाता और तब मैं विजय का अहसास करता हुआ तुमसे काफी देर बात-चीत करता रहता।'

—'हाँ, मुझे सब याद है। और यह भी याद है कि आप मुझे ऐसे उपन्यास पढ़ने के लिए कहा करते जिनमें सेक्स सम्बन्धों पर ही कथा आधारित होती थी। मैं एक बात बताऊँ कि उस सेक्स सम्बन्धी ज्ञान ने पहले-पहल

तो मुझ कई बार सब-कुछ प्रेक्टिकली कर डालने के लिए उकसाया लेकिन जैसे-जैसे मैं आपसे सेक्स पर खुलकर बातें करने लगी तो सेक्स उत्तेजना का विषय न बनकर गम्भीर चिन्तन का विषय बन गया। तुम्हारा क्या ख्याल है अनामिका ?'

—'मेरा ख्याल तुम्हारे ख्याल से मेल नहीं खाता। सेक्स मेरे लिए एक जरूरत है, वह मेरे लिए समस्या नहीं है, जिस पर मैं घण्टों बहस करूँ। मुझे सेक्स-नैतिकता में विश्वास नहीं है।'

—'तो क्या तू फ्री-सैक्स की हामी है ? मान ले कि तेरे कई पुरुषों से सम्बन्ध हो जाते हैं तो क्या तेरे पति को आपत्ति नहीं होगी ?'

—'होगी भी और नहीं भी होगी। लेकिन मैं तो यार शादी ही नहीं करना चाहती। कई बार सोचा है कि विचारों के धरातल पर मेरी मानसिकता मोहन राकेश के अन्तराल की 'पीली' लड़की से मिलती-जुलती है। यदि शादी करनी ही पड़ी तो मैं पीली लड़की जैसी अनुभूति से अवश्य गुज़रूँगी और मुझे आशा है कि मेरा प्रेमी कुमार जैसा पात्र नहीं होगा।'

—'तो तू कुंठा क्यों रखती है हो जा न पीली लड़की।'

—'नहीं बाबा ! मैं सबसे पहले अपना कैरियर बनाना चाहती हूँ। मेरी नज़र में कैरियर सबसे महत्वपूर्ण समस्या है। आज की नारी जब तक आर्थिक स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त कर लेती तब तक उसे इस ओर ध्यान भी नहीं देना चाहिए। मैं इस कैरियर के लिए सब-कुछ दाँव पर लगा सकती हूँ।'

—'कैरियर को तो मैं भी मुख्य मानती हूँ। लेकिन मेरे साथ यह समस्या उठ गई है कि माता-पिता ने अरेंज्ड मैरिज का निर्णय लिया है और तुम तो जानती हो कि मैं डैडी को नाराज़ नहीं कर सकती।'

—'अरे कल्पना ! उसका क्या हुआ ?'

मैं बड़े ध्यान से उन दोनों की बातें सुन रहा था। लेकिन यह 'उस' कौन है ? जानने के लिए उत्सुक हो गया।

—'बता न यार !'

—'वही आई० ए० एस० महोदय ? मैंने पूछ ही लिया।'

कल्पना ने एक गहरी निःश्वास भरी। मुझे अप्रैल का धूप से गरमाया दिन याद आ गया। हम तीनों पार्क में बैठे हुए चैरी खा रहे थे कि अचानक

अनामिका ने चार-चिनारी जाने के लिए इच्छा प्रकट की। मैंने तुरन्त कल्पना की आँखों में झाँका। वहाँ एक उमँगती हुई स्वीकृति मिली। शिकारे में कई ऐसी बातें हुईं जिनका सम्बन्ध झील की गहराई से भी ज़्यादा गहरा था। झील में जो पहाड़ों का साया पड़ रहा था वह पहाड़ों की भव्यता को बढ़ाने में सहायक था लेकिन जब वह साया हिलने लगता तो मेरे मन में भी कुछ हिलने लगता। तभी अनामिका ने कहा—

—'आपके जीवन में और तीसरी लड़की को हम नहीं आने देंगी। हालांकि मैं जानती हूँ कि यह बहुत छिछोरा इरादा है लेकिन जब तक हम दोनों आपके साथ हैं तब तक किसी तीसरी का साया भी नहीं पड़ सकता।'

—'अरी जा तू तो इन्हें समझ ही न सकी। ये किसी के बांधे-बँधे हैं जो तू बाँध लेगी। इनकी इतनी ही कृपा है कि हम अपने वर्तमान के हर लम्हे को सार्थक बना रही हैं। इससे ज्यादा अधिकार जताना एक प्रकार से अनुचित ही है। जो क्षण हमें मिला है वही सच है, वही अपना है और उसे ही सार्थक बनाना मैं सही समझती हूँ।'

—'मैं इतना सब-कुछ नहीं जानती लेकिन यह बात अवश्य है कि एक मित्र के नाते इन पर विशेष अधिकार अवश्य समझती हूँ।'

—'वह तो हमेशा रहेगा।' मैं बोल उठा।

—'आप लिजलिज़ी भाषा का प्रयोग क्यों करने लगते हैं?' कल्पना ने टोका। यदि आप सही युगबोध रखते हैं तो भाषा भी ठोस और व्यावहारिक यथार्थ की होनी चाहिए। आपके बुद्धिजीवी होने पर मुझे अविश्वास ऐसे ही समय पर होता है। लेकिन आपका इसमें दोष कम है। परिस्थितियों ने आपको ऐसा बना दिया है। आप सभी को खुश रखना चाहते हैं और कोई भी आपसे खुश नहीं रह पाता। यही तो आपकी विडम्बना है। सच पूछिए, तो मेरे जीवन में भी विसंगति आपकी इसी विडम्बना ने पैदा कर दी है। मैं आपके लचर रूप से घृणा करती हूँ लेकिन आपकी विडम्बना को सोचती हूँ तो प्यार और करुणा के भाव उभर आते हैं।'

—'लेकिन उस बेचारे आई० ए० एस० ने क्या बिगाड़ा था जिस

भर तुम्हारा प्यार न उमड़ कर क्रोध उमड़ा था।'

—'वह निरा उल्लू का पट्ठा!'

—'कल्पना मुझे भी तो बताओ यह क्या प्रसंग है ?'

वे दोनों बेतहाशा हँसने लगीं। जब हँसी थमी तो मैंने फिर प्रश्न दुहराया। अबकी बार कल्पना ने मुस्कराते हुए कहा—

—'बात यों हुई कि जब मैं फाइनल करके घर पर बैठी हुई थी कि अचानक माता-पिता को सूझा कि इसकी शादी कर दी जाय। बस, फिर क्या था। एक के बाद दूसरे लड़के को देखना और खोजना आरम्भ हो गया। इसी बीच मुझे यहाँ यह अवसर मिल गया और मैं घर से यहाँ आ गई। लेकिन छुट्टियों में जब घर गई तो एक सप्ताह के बीच एक साहब मुझे देखने के लिए आ गए। डैडी जी ने कहा कि लड़का आई० ए० एस० है। वह ठिगने कद के थे। मैं कमरे में जैसे ही आई तो कुछ सकपका से गये। डैडी हँसमुख हैं अतः उन्होंने एक हँसी की बात कर दी। मैं खुलकर हँस गई लेकिन वे चुप ही रहे। बाद में जब वे कुछ बोले तो ज्ञात हुआ कि अपने छितरे और भद्दे दाँतों के कारण शायद खुलकर न हँसे हों। थोड़ी देर के बाद ड्राइंग रूम में हम दोनों को अकेला छोड़ दिया गया। मैंने ही आखिरकार चुप्पी तोड़ी।'

—'आप सहज होकर बैठिए और कुछ अपने जीवन के रोचक प्रसंग सुनाइये।'

लेकिन उन्होंने सबसे पहला प्रश्न किया—

—'आपके ख्याल में आपके विभागाध्यक्ष कैसे हैं ?'

—'अच्छे हैं ?'

—'मैंने उनके सम्बन्ध में बहुत-सी बातें सुनी हैं।'

—'सुनी होंगी।'

—'लेकिन आप बताइये कि सच्चाई क्या है ?'

—'सच्चाई तो यह है कि वे बड़े भले आदमी हैं। वैसे सुनने के लिए तो आप मेरे बारे में भी बहुत सुन सकते हैं।'

—'अच्छा जाने दीजिए उन्हें। आपके विचार डा० आनन्द के बारे में कैसे हैं।'

—'वे मेरे निर्देशक हैं और बड़े अच्छे हैं।'

—'लेकिन लोग तो उनके बारे में बहुत कुछ कहते हैं।'

—'क्या कहते हैं ?'

—'यही कि वे शराबी हैं और उनका चाल-चलन…'

—'उनका चाल-चलन ? क्या मतलब ?'

—'मतलब यही है कि उनकी आदत है कि लड़कियों के बीच उनके शरीरों से टकराते फिरते हैं। उनके साथ हँसते हैं। कभी किसी की साड़ी की तारीफ़ करते हैं तो कभी किसी के जूड़े की। जब देखो तो वे लड़कियों से घिरे पाये जाते हैं।'

—'और क्या-क्या सुना है उनके बारे में ?'

—'यही कि ऐसे व्यक्ति के अण्डर रिसर्च नहीं करनी चाहिए।'

—'और भी कुछ आप सुनाना चाहें तो सुना डालिये।'

—'यही कि मेरे ख्याल में आनन्द अच्छा आदमी नहीं है।'

—'अब मेरा ख्याल सुनिए। आप और आनन्द में सिर्फ इतना-सा ही अन्तर है। आनन्द पुरुष है और आप हिजड़े। मैं शादी करना चाहूँगी तो किसी पुरुष से ही। इसी झुँझलाहट के साथ मैं उठ खड़ी हुई और अन्दर चली गई। डैडी मेरे गुस्से को ताड़ गये। यह था मेरा पहला साक्षात्कार आई० ए० एस० साहब से।'

उस दिन हम तीनों बहुत हँसे थे। हँसे थे आई० ए० एस० साहब पर। लेकिन हँसते-हँसते मैं अचानक ही गम्भीर हो गया था। मैंने पूछ ही लिया—

—'कल्पना ! अगर तुम्हारा पति दूसरा आई० ए० एस० निकला तब क्या करोगी ?'

—'मैं बुद्धि से काम लूँगी। वैसे आपको आश्चर्य होगा कि उन्होंने कभी मुझसे अकेले में मिलने की इच्छा ही प्रकट नहीं की। यह बात मुझे न जाने क्यों अच्छी लगी है तभी हम लोगों ने देखा कि चार चिनारी स्कूल के बच्चों से भरने लगी थी। हम बातों में इतने लीन थे कि पता ही न चला उनके आने का। हम उठ खड़े हुए। शिकारे में बैठे और हमारा शिकारे वाला चप्पू चलाने लगा। झील का पानी हिलने और काँपने लगा था एक बार फिर।

लड़ाई

धीरज जैसे ही इण्टरव्यू के लिए बुलाया गया तो उसने अपना ब्रीफ-केस उठाकर हाथ में थाम लिया। मन में ईश्वर का नाम लिया और वाइसचांसलर के आफिस चेम्बर में पहुँचने से पहले देहलीज़ पर ठिठक गया। वह सोचने लगा कि अन्दर जाया जाय या न जाया जाय, क्योंकि उसे यह पूरा पता था कि श्रीमती रोहिणी का चयन हो चुका है और इण्टरव्यू एक महज तमाशा है। उसका आत्मसम्मान चटकने की दशा में पहुँच गया था। एक सप्ताह पूर्व उसने कुलपति को लिख दिया था कि इण्टरव्यू में आप दो के स्थान पर एक ही एक्सपर्ट को बुला रहे हैं और वह एक भी कौन? रोहिणी का टीचर। पूर्व निश्चित स्थिति को जानते हुए भी वह अन्दर किस शक्ति से धकेला हुआ पहुँच गया, वह नहीं जानता। उसे बस इतना ही ज्ञान है कि कुलपति व्यंग्य-भरी मुस्कान के साथ उससे मुखातिब हुआ था। उसके कहने पर वह कुर्सी पर बैठा। उसने देखा कि वह एक अर्द्धवृत्ताकार बनाए हुए विद्वानों के केन्द्रबिन्दु के रूप में था। सबसे पहले कुलपति ने शैक्षिक योग्यता की सूची सुनाई—

मैट्रिक	—	प्रथम श्रेणी
इण्टर	—	प्रथम श्रेणी
बी० ए०	—	प्रथम श्रेणी तथा विश्वविद्यालय में द्वितीय स्थान
एम० ए०	—	प्रथम श्रेणी तथा विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान

पी-एच० डी० इत्यादि।

इसको सुनकर विशेषज्ञ महोदय व्यंग्यात्मक मुस्कान से अपने चेहरे की कुटिलता चमकाने लगे।

प्रश्न किया गया—'आपकी अनबन अमुक विद्वान से क्यों है ?'

उसने उत्तर दिया—'मेरी उनसे कोई अनबन नहीं है।'

प्रश्न फिर हुआ—'अच्छा छोड़िए यह बात। मुझे यह बताइये कि कृष्णदास कब पैदा हुए ?'

—वह मौन रहा।

—'अच्छा यह बताइये सम्वत् १३१० में कौन-सा कवि मरा ?'

—धीरज फिर मौन रहा।

—'तुलसीदास की १२वीं पुस्तक का नाम क्या है ?'

—धीरज ने उत्तर दिया—विनयपत्रिका।

—'नहीं विनय-पत्रिका तो २०वीं पुस्तक है।'

—सभी सदस्यों की हँसी गूँज गई।

अब नम्बर आया दूसरे सदस्य का। ये सज्जन हिन्दी नहीं जानते।

—'आप यह बताइये कि सूरदास की पहली ग़ज़ल कौन-सी है ? जिसे अक्सर गाया जाता है।'

—'जी, उन्होंने ग़ज़लें नहीं लिखी हैं।'

—'अच्छा, उन्होंने गजलें नहीं लिखीं तो क्या उनकी ग़ज़लें आपने लिखी थीं ? वे क़हक़हा लगाते हुए कुर्सी पर लोटें मारने लगे।'

—धीरज एक क्षण मौन रहा। तभी एक बार फिर क़हक़हा गूँजा। अब तो धीरज के लिए उठना जरूरी हो गया। वह जैसे ही उठा तो कुलपति महोदय ने बैठने का आग्रह किया। वह विवश होकर बैठ गया। वे बोले :—

—'छोड़िये साहित्य की बात। मैं तो आप से बहुत हल्का-सा सवाल करना चाहूँगा। आप मुझे बता दें—"अकबर बादशाह की फूफी का नाम क्या था ?"

वह कहने लगा कि मेहरबानी करके मुझे बाहर जाने की इजाज़त दे दीजिये। लेकिन फिर भी कुलपति ने बिठा ही लिया। उन्होंने दूसरा सवाल दाग दिया —

—'मेरे आफ़िस चेम्बर की छत कितने मीटर लम्बी और कितने मीटर चौड़ी होगी ?'

—'वह मौन रहा।'

—'अच्छा शंकराचार्य मन्दिर की ऊँचाई टूरिस्ट सेंटर की छत से कितनी अधिक है ?'

—'वह तैश में आ गया। आप ये सवाल मुझ से क्यों कर रहे हैं ? मुझ से आप किसी विषय पर चर्चा करें। इण्टरव्यू का मतलब ऐसे वाहियात सवाल करना तो नहीं माना जा सकता।'

—'लेकिन आपसे जनरल नालेज के सवाल भी तो पूछना आवश्यक है। हमें अफसोस के साथ कहना पड़ रहा है कि न तो आप साहित्य जानते हैं और न जनरल नालेज ही। यहाँ तक कि आपको तमीज़ भी नहीं है कि बड़े लोगों से कैसे पेश आया जाता है।'

—'मैंने कौन-सी बदतमीज़ी की है ?'

—'आप हमारे नौकर हैं। क्या आप इस मुहावरे का अर्थ बता सकते हैं—'जल में रहे मगर से वैर' यदि बता सकते हैं और उस पर अमल नहीं ला सकते तब तो आपकी बदतमीज़ी और भी साबित हो जाती है।' सभी सदस्यों ने अपनी मुद्रायें छुरे जैसी तेज़ बना लीं।

—धीरज तमतमाता चेहरा लेकर बाहर निकल आया था। आखिरकार हुआ वही जो पहले से ही हो चुका था। मुद्राएँ बनती हैं, मुद्राएँ ध्वनित होती हैं और उसकी मुद्रा तनाव, संत्रास तथा दबाव की स्थिति में पिचक जाती हैं, ठीक पिचके हुए कनस्तर की तरह। पत्नी साहस बँधाती है। बच्चे सहमे हुए कभी उसके चेहरे पर जमी उदासी की गर्द को हाथों से पोंछते हैं तो कभी 'किस्सू' से साफ करने की कोशिश करते हैं। वह दोनों बच्चों को फीकी मुस्कान से बहलाने की कोशिश करता है। उसके होठों पर जैसे इन्सानियत की नीली लाश का साया घुमड़ आया हो। या फिर उसके होठों की पपड़ी पर खड़िया पोत दी गई हो।

पत्नी ने सलाह दी कि इस केस को आगे बढ़ाओ। विभागाध्यक्ष ने उसके सर पर हाथ रखा कि वे हमेशा अन्याय के विरुद्ध इस लड़ाई में साथ देंगे। दोस्तों ने बहुत समझाया कि तुम समझौता कर लो क्योंकि कठिनाई में तुम्हारा कोई साथ देने वाला नहीं है। यह सुना जाता है कि

कुलपति चार्ज-शीट देने वाला है। इन्हीं परिस्थितियों में वह अपने को चलती-फिरती लाश की तरह महसूस करने लगा। उसकी इस लगातार पिटाई से आत्म-विश्वास भी हिलने लगा था। रात को उसे नींद नहीं आई। उसे वह दिन याद आया जबकि उसे एक बार पहले भी नौकरी से इस्तीफा देना पड़ा था। वह अन्याय के विरुद्ध अकेला ही लड़ता रहा है। लेकिन आज तो विभागाध्यक्ष उसके साथ हैं। एक से दो भले, अतः उसने लड़ाई जारी रखने का ही निर्णय लिया।

पत्नी ने उसकी पिछली भूलें दुहराईं। अगर तुम व्यावहारिक होते तो तीन वर्ष पहले ही पदोन्नति हो गई होती। कितने अच्छे थे पिछले उप-कुलपति! कुलपति ने तुमसे कहा था कि अगर पदोन्नति चाहते हो तो उपकुलपति से उनके घर जाकर मिल लो। वह उनकी सलाह मान कर घर के लिए अपोइण्टमेंट लेने उपकुलपति के दफ्तर भी गया था। उन्होंने खुशी-खुशी दूसरे दिन घर पर समय दे दिया था। ठीक समय पर वह उनकी कोठी पर पहुँचा। उसने देखा कि उपकुलपति स्वयं फाटक के पास खड़े हुए थे। एक व्यक्ति उन्हें देखकर साइकिल से उतर पड़ा और उसने बड़े अदब के साथ सलाम किया। वह उसके सामने ही आधा किलो मीट कसाई से ले चुका था। वह मीट वाले कागज़ के लिफाफे को जैसे छुपाने की कोशिश कर रहा था। उपकुलपति ने तुरन्त कहा—

—'अरे भाई! इसकी क्या जरूरत थी।' फिर अपने नौकर को बुलाकर कहा—'देखो ये क्या लाए हैं लेकर घर में पहुँचा दो।'

वह व्यक्ति शरमाते हुए मीट देने को जैसे विवश था। इसके बाद वे मेरी ओर मुख़ातिब हुए और कोठी के अन्दर चलने को कहा। उस समय वे बड़े मधुर स्वभाव के लग रहे थे। ड्राइंग रूम में जाकर पूछने लगे।

—'आप क्या लेंगे? चाय या काफी?'

—'आपकी मेहरबानी। जैसी आपकी इच्छा!'

—'अच्छा देखो अच्छी सी काफी बनाके लाओ।'

नौकर 'अच्छा हुज़ूर' कहकर चला गया। थोड़ी देर तक वे उसकी तरफ मानीखेज़ मुस्कराहट फेंकते रहे। मुझे ऐसा लगा जैसे एक ससुर

अपने लायक और मनपसन्द दामाद को देखकर हर्ष का अनुभव कर रहा हो। दिल उत्साह से भर गया था। इसलिए आज वह कश्मीर वादी की खूबसूरती की भी चर्चा करने में नहीं झिझका। वह कुछ देर तक तो मौसम पर भी बातें करता रहा। मुस्कराहट उनके होठों पर उसी तरह अनबुझी बनी रही। इतने में ही खाने की कुछ चीज़ों के साथ काफी भी आ गई। काफ़ी बड़े ज़ायके की थी। मज़ा आ गया। काफ़ी पीने के बाद वे बोले थे —

—'कहिए क्या हुकुम है ?'

—'ऐसा है कि मेरा प्रमोशन ड्यू है और आपसे मैं खासतौर पर नज़रे इनायत चाहता हूँ। कुलपति महोदय ने मुझे राय दी थी कि मैं आपसे मिलूँ क्योंकि आप ही पदोन्नति करा सकते हैं।'

—'जी हाँ, यह बात तो बिलकुल सोलह आने सही है। लेकिन आप फरमाइये तो···।'

—'मैं तो सिर्फ आपकी मेहरबानी चाहता हूँ और सिर्फ अर्ज़ ही कर सकता हूँ।'

—'हाँ, हाँ, भई ! आप अर्ज़ ही कीजिए।'

—'अर्ज़ यह है कि मेरा प्रमोशन ड्यू है···।'

—'यह तो मैं समझ गया लेकिन आप बताइये कि मैं क्या कर सकता हूँ और आप क्या कर सकते हैं। फरमाइये।'

—'बात यह है कि आप ही तो···'

—'भई ! ठीक है, लेकिन···'

यह कहते हुए वे उसकी तरफ़ ऐसे देखने लगे जसे वह अभी-अभी कोई जादू का खेल करने वाला हो। जिसे देखकर उपकुलपति फिर से मुस्कराने लगेंगे। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। वे उठ खड़े हुए और 'ठीक है' कहते हुए कोठी के अन्दर चले गये।

धीरज ने एक लम्बी आह भरी। रात के सन्नाटे में कोई कम्पन नहीं हुई। उसने अनुभव किया कि वह इस लड़ाई में शायद जीत नहीं सकेगा। उसे ऐसा महसूस हुआ कि उसकी लम्बाई घटती जा रही है। वह बौना होता जा रहा है। उसने महसूस किया कि वह बीमार है। उसे

अपनी आँतों में दर्द-सा अनुभव हुआ। वह नहीं जानता कि यह दर्द क्या है और कहाँ होता है। बड़े होने का सपना तो दूर वह छोटे रूप में भी अपना अस्तित्व नहीं बना पायेगा। उसने कितनी बार इच्छा की कि हर कोई वह हो सके जो 'वह' होने के लिए प्रयत्नशील रहा। अर्थात् हर कोई अपने अस्तित्व को उसके जैसा ही सही रूप में उपलब्ध कर सके।

जब उसके सामने 'शो कौज़ नोटिस' आया तो वह काँपने लगा। उस की आँखों के सामने पहले अँधेरा छा गया। फिर लगा जैसे किसी ने उसके सर पर पत्थर दे मारा हो। वह अपने को मृत, पराजित और सताया हुआ समझने लगा। कैम्पस में किसी ने कहा—साला शराबी, सनकी और खब्ती है।

—'यह बड़ा मीन है और इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता।'

—'झगड़ालू बहुत है। अपनी हैसियत भी नहीं देखता। कहाँ यह और कहाँ कुलपति ! साला हीरो बनना चाहता है।'

—'यार ! आदमी है बड़ा बहादुर। कुलपति को ऐसा जवाब दिया कि बेचैन हो उठे हैं। एक छोटा आदमी भी कितना दिलेर और दमदार हो सकता है। कितना विश्वास है उसे अपने पर।'

—'अरे यार ! यह आदमी बहुत लम्बी खींचता है। रजिस्ट्रार को 'डिग्नीफाइड क्लर्क' कह गया।'

—'तुम्हें पता नहीं, इसे खराब कर दिया है उसके अध्यक्ष ने। 'चढ़ जा बेटा सूली पर भली करेंगे राम' बस अब तो वह कहता फिरता है कि वह अपने से छोटों के साथ नहीं भिड़ता, उसे तो बड़े लोगों के साथ जूझने में ही आनन्द आता है।'

—'यह आदमी बहुत बोरिंग है क्योंकि हर समय किसी न किसी का ध्यान अपनी तुच्छ और हीन समस्याओं की ओर आकर्षित करने की कोशिश करता रहता है।'

—'इसे कहीं दूसरी जगह नौकरी खोज लेनी चाहिए। भला किसी यूनिवर्सिटी के टीचर को यह शोभा देता है कि हाईकोर्ट के दरवाज़े खटखटाये। ऐसे ही लोगों ने यूनिवर्सिटी की शान को धक्का पहुँचाया है।'

—'यार तू ही समझा कि यह हाथ जोड़कर अब भी माफी माँग ले। आत्मसम्मान कहीं किसी टीचर में भी हुआ करता है जो यह आत्म-सम्मान की रक्षा की दुहाई देता है।'

—'मैं एक दिन सेक्रेटेरियेट में गया था। वहाँ चीफ मिनिस्टर के प्राईवेट सेक्रेटरी ने बताया कि धीरज कैसा पागल आदमी है कि मेरे पास भी शिकायत लेकर नहीं आया। उसका सबसे बड़ा कुसूर यही है कि इतने वर्षों में कोई 'पालिटीकल पुश' नहीं बना पाया।'

—'उस पर भी बच्चू आज के ज़माने में ईमानदार और ज़मीर वाले बनने की कोशिश करते हैं। परीक्षा-भवन में नकल करते हुए पकड़ा भी तो किसे ? ऐजूकेशन मिनिस्टर के भतीजे को। उसकी बुद्धि मारी गई है। कितना बवंडर मचा। इस सारी मुसीबत की जिम्मेदारी उसी पर है। मिनिस्टर साहब सख्त नाराज़ हैं। कहते हैं कि कुलपति को उन्होंने एक्शन लेने के लिए कहा है।'

—'बड़ा हठधर्मी है। शिक्षामन्त्री ने उसे अपने यहाँ बुलाया था। कितना सम्मान देना चाहा था उन्होंने लेकिन इस आदमी ने उनके सेक्रेटरी को कह दिया—"मिनिस्टर साहब मुझसे मिलना चाहते हैं तो मेरे ग़रीब-खाने पर तशरीफ़ लायें। मुझे खुशी होगी। लेकिन मुझे तो उनसे मिलने की इच्छा नहीं है। मैं उनके यहाँ नहीं जा सकता।"'

—'सुना है कि 'शो कौज़ नोटिस' में ग्रामर की दस ग़लतियाँ निकली हैं। उसने उन ग़लतियों के साथ रजिस्ट्रार को लिखा है कि वह माफी माँगे क्योंकि शो कौज़ नोटिस में 'सर' या 'डीयर सर' का प्रयोग नहीं किया गया।'

—'उसका तो सर फिर गया है क्योंकि वह नौकरी भी करना चाहता है और आत्म-सम्मान की रक्षा भी करना चाहता है।'

—'सभी लोग इस सिर-फिरे की हँसी उड़ाते हैं।'

—'लेकिन यार ! उसके सामने तो सबकी ज़ुबान बन्द रहती है।'

—'ज़ुबान बन्द करने की बात नहीं। ऐसे लोगों से भिड़ने में अपनी ही धूल होती है। इसलिए ख़ामोश रहना ही बुद्धिमानी है।'

—'लेकिन वह तो बड़ा निर्भीक है। उसने गवर्नर साहब को लिखकर

दिया है कि रोहिणी के पास तो प्राकृतिक पूँजी है । उसका बेहतरीन दोस्त है उसका शरीर । यही व्यावहारिकता और सच्ची योग्यता है कि शरीर बेचो—जिससे तुम मखमली गद्दों पर लेटे-लेटे सफलता की चोटी पर बैठ सको । यह है उसका गुरुमन्त्र ! उसकी सफलता का रहस्य !'

—'बहुत ही लफंगा आदमी है ।'

—'क्या तुम्हें भी रोहिणीजी ने प्रसाद चटा दिया है जो पक्ष ले रहे हो । वैसे यार ! अब भी वह बुरे काम के लिए बुरी नहीं हैं ।'

—'अच्छा यह बताइये कि उनका जादू किस पर नहीं चला है ? आप भी तो पुराने चाहने वालों में से हैं ।'

ये और इसी प्रकार की अन्य बातें कैम्पस में सुनने को मिला करतीं । कैम्पस में परीक्षाएँ चल रही थीं । प्रोफेसर उत्तम जो रोहिणी के बड़े समर्थक थे, सुपरिंटेंडेंट थे । उनके सामने परीक्षार्थी नक़ल कर रहे थे । लेकिन कुछ भी नहीं किया गया । परीक्षा के बाद उत्तम साहब ने कुलपति को मौखिक रूप में सूचना दी और परीक्षार्थियों को दण्ड देने के लिए ज़ोर डाला । कुलपति ने लिखित रूप में रिपोर्ट माँगी । शाम को प्रो० उत्तम और रोहिणी के सभी समर्थक शिक्षा-मन्त्री के यहाँ सूचना देने गये । शिक्षा-मन्त्री ने कुलाधिपति गवर्नर साहब के यहाँ जाकर सारी स्थिति स्पष्ट की । प्रो० उत्तम ने सोचा । यही उचित समय है कि सारे अध्यापकों को ले जाकर गवर्नर के सामने प्रमाणित कर दें कि विश्वविद्यालय का नेतृत्व उन्हीं के हाथों में है ।'

जब सारे अध्यापक राजभवन के अहाते में पहुँचे तो देखा कि रोहिणी जी प्रो० उत्तम के साथ कार से उतरीं । सभी अध्यापकों को एक हॉल में बिठा दिया गया । थोड़ी ही देर में शिक्षा-मन्त्री ने प्रवेश किया । गवर्नर साहब के आने पर सभी लोग एक बार फिर खड़े हो गये । बैठने के बाद कार्यवाही शुरू हुई । प्रो० उत्तम ने विश्वविद्यालय में जो गड़बड़ी हो रही थी उस सबका ज़िम्मेदार कुलपति को ठहराया । "परीक्षा-भवन में नक़ल होती है । यदि कोई प्रोफेसर टोकता है, तो उसको पीटा जाता है ।" इत्यादि ऐसी ही घटनाएँ रोज़ होती रहती हैं । रोहिणीजी ने भी भाषण दिया और सारी बुराई की जड़ कुलपति का शिथिल अनुशासन बताया ।

साथ ही अपनी राय प्रकट की कि कुलपति को निकाल देना चाहिए । प्रो० उत्तम के सभी समर्थकों ने सिद्ध कर दिया कि अब तो परिस्थिति प्रो० उत्तम ही सँभाल सकते हैं ।

धीरज उठकर अपने विचार प्रकट करने लगा । उसने सारी वस्तु-स्थिति सही रूप में उपस्थित कर दी । प्रो० उत्तम के दोषारोपण को ग़लत सिद्ध कर दिया । उसने कहा—"वास्तव में सारा दोष अध्यापकों का है और अध्यापकों में से भी सबसे अधिक प्रोफ़ेसर उत्तम का है । मैंने जब एक परीक्षार्थी को नक़ल करते हुए पकड़ा तो प्रोफ़ेसर उत्तम ने मेरी रिपोर्ट को दबा दिया । वह रिपोर्ट अगर कुलपति के पास भेज दी गई होती तो वस्तुस्थिति इतनी नहीं बिगड़ती । मैं जानता हूँ कि वह परीक्षार्थी शिक्षामन्त्री का सम्बन्धी था । इसीलिए रिपोर्ट को दबाया गया । इतना ही नहीं दूसरे दिन मुझे निरीक्षण के लिए नहीं रखा गया । गुस्ताखी माफ़, जब तक शिक्षा-संस्थाएँ स्वतन्त्र नहीं होंगी, उनको स्वायत्तता नहीं दी जायेगी, समय-समय पर राजनीति का दख़ल रहेगा; तब तक अनुशासन-हीनता बनी रहेगी । कुलपति के लिए, जब तक दख़लन्दाज़ी शिक्षा-मंत्रालय करेगा तब तक वे इस अनुशासन-हीनता के ज़िम्मेदार नहीं माने जा सकते । जहाँ तक मेरा ज्ञान है कुलपति को लिखित रूप में कोई रिपोर्ट नहीं दी गई है फिर वे एक्शन किस बिना पर लेते । प्रोफ़ेसर उत्तम से मैंने कई बार निवेदन किया कि मेरी रिपोर्ट आगे फारवर्ड कर दी जाय लेकिन उन्होंने मेरी एक न सुनी । उल्टे शाम को वे और उनके समर्थक शिक्षामन्त्री के निवास-स्थान पर सलाह-मशविरा करने पहुँच गये । यह तो बिल्कुल ऐसा ही हुआ जैसा कि इस शेर में है—'हमने सोचा था कि करेंगे हाकिम से फरियाद, पर कम्बख्त वह तेरा चाहने वाला निकला ।'

इस भाषण से सारा मन्सूबा धरा-का-धरा रह गया । गवर्नर साहब ने स्थिति भाँप ली । दूसरे दिन अपने कमरे में धीरज अपने 'शो कौज नोटिस' को दुबारा इसलिए पढ़ रहा था कि गम्भीरता के साथ उसके कानूनी पहलू को समझ सके तथा उसमें लगे हुए चार्जेज़ के सही उत्तर सोच सके । हालाँकि इसके लिए उसने अपने एडवोकेट से भी राय ले ली थी । इसी बीच अचानक कमरे का दरवाज़ा किसी ने खटखटाया । वह

आगन्तुक को देखकर हैरान हो गया। सामने उसका दुश्मन खड़ा था। कुलपति ने दोस्ती का हाथ आगे बढ़ाया। धीरज ने देखा कि उनकी आँखें नम हो आई थीं। कुलपति ने धीरज को गले से लगा लिया और पीठ ठोंकते हुए कहा—'मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी। कम से कम पूरे कैम्पस में एक व्यक्ति तो ज़मीर वाला निकला। कल तक मैं तुम्हारा एक अच्छा दुश्मन था लेकिन आज हम दोनों अच्छे दोस्त हैं। तुमने अपने ज़मीर की रक्षा की और सत्य को सत्य ही सिद्ध कर दिया। अब मैं तुम्हारे साथ हुई इस दोस्ती की रक्षा करूँगा।'

'शो कौज़ नोटिस' के पन्ने टेबुल से उड़कर फर्श पर गिर गये थे। धीरज और कुलपति दोनों कॉफ़ी पी रहे थे। धीरज की पत्नी का सर आत्म-सम्मान की भावना से ऊपर उठा मालूम पड़ रहा था।

नये मूल्य की यातना

फुटपाथों की दीबारों से चिपके सभी बासी विज्ञापनों को रोज़-रोज़ पढ़ना और सूनी सड़कों पर निरुद्देश्य भटकना उसका रोज का कार्यक्रम बन गया था। गर्म चाय पीने की इच्छा से उसके पैर अपने-आप किसी रेस्ट्रां के सामने रुक जाते और बिना पिये ही फिर आगे बढ़ जाते। लेकिन कहाँ के लिए ? कुछ भी पता नहीं। वह सड़कों को अपने जूतों से नापता फिरता। एक दिन अचानक एक पतली-सी गली में एक महिला के साथ आती हुई उसे वह मिल गई। बहुत अर्से के बाद ! लेकिन उसने उसे अपने सामने आते हुए आँखें झुकाये देखा। उसने भी उसे इस तरह देखा जैसे किसी अजनबी को देख रही हो और देखकर आँखें झुका लीं। वह ठिठककर खड़ा हो गया। उसके होंठों पर नाम पुकारने की इच्छा तड़पी और फिर दम तोड़ती हुई शांत हो गई। लेकिन वह न ठिठकी और न उसने मुड़कर ही देखा। वह सोचने लगा कि नारियाँ कैसी होती हैं। किस मिट्टी की बनी होती हैं अपने को जिस रूप में ढला हुआ पाती हैं उसी में सिमटी दिखाई देने लगती हैं। यह क्या हो गया है उसे ? इतनी उपेक्षा क्यों ? उसकी नज़र ने यातना की पिनें चुभा दीं। यह अजीब-सा रूखा-पन क्यों ?

यही सोचते-सोचते वह वर्षों चलता रहा। वह चलता रहा और यह प्रश्न उसे सालता रहा। वह चलता रहा लेकिन यह प्रश्न उसकी नज़र के सामने फैलता गया—फैलता ही गया—एक विशाल शून्य को धारण किये हुए—एक लम्बे खम्भे पर टिका हुआ ? खम्भा जो ज़मीन से आसमान तक व्याप्त था। वह इसी प्रश्न के नीचे एक बिन्दु ! बहुत छोटा-सा बिन्दु बनकर रह गया।

यदि वह उसे न मिली होती तो उसकी नज़र में कोई यातना भी नहीं

मचली होती ! जब कभी भी उससे उसकी मुलाक़ात हो जाती है तो वह बिलकुल अकेला हो जाता है और अन्दर का दर्द कुरेदता ही नहीं बल्कि कचोटने लगता है। तब वह स्वयं यातना का दुहरे अर्थों वाला अधूरा वाक्य बन जाता है। यदि थोड़ी-सी राहत उसे मिलती भी है तो केवल भटकने में ही मिलती है। जहाँ अजनबी लोगों की भीड़ में वह अपने को व्यस्त दिखाता है। इस नगर के हर रेस्ट्राँ, कॉफी हाऊस, वंड हिलटॉप और 'जीरोइन' ये सभी जगहें उसे अनुभूति के धरातल पर अकेला बना देती हैं। ऐसा अकेला कि अन्दर की यातना चेहरे पर झाँकने लगती है। ऐसी दशा में वह लोगों के लिए करुणा का विषय बन जाता है।

उसके जीवन का धुँधलका जब रात को दिन से अलग ही नहीं होने देता तो किसी रेशमी सुबह की कल्पना करना ही सम्भव नहीं। तीन वर्ष पूर्व जब वह उससे पहली बार मिली थी तो उसे लगा कि जिंदगी में पत्नी के अलावा क़िसी नारी मित्र का होना बहुत ज़रूरी था। शायद ऐसी ही अनुभूति उसकी भी रही हो। वह शामें जो बुलिवार्ड के किनारे डल झील का दृश्य देखते-देखते उतरीं, उन्हीं में उन्होंने अपनी-अपनी संध्याओं की बोझिल कहानी का अर्थ बूझने का प्रयत्न क़िया था।

—'हम अनजाने ही इस अँधेरी रोशनी में भटकते हुए क्यों आ गये हैं ?'

—'शायद इसलिए कि तुम जैसा चाहते हो वैसा प्यार अपने घर में नहीं पाते हो। यही शायद मेरे पक्ष में भी है। वे मुझे बहुत चाहते हैं लेकिन मैं कोशिश करने पर भी शायद उन्हें वह सब-कुछ नहीं दे पाती। इसीलिए वे आधी रात के बाद क्लब से लौटते हैं।'

—'तुम्हें उनके इतनी रात तक अलग रहने पर आपत्ति नहीं होती ?'

—'इसका उत्तर आप अपने घर अपनी पत्नी से प्राप्त कर सकते हैं।'

—'अच्छा छोड़ो भी यह बात। हमें जो समय मिला है हम उसका सही उपयोग करें। इतना अवश्य है कि हम दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। लेकिन यह बताओ कि तुमने ऐसा क्या जादू कर दिया है कि मेरी पत्नी तुम्हारा ही नाम हमेशा लेती रहती है ?'

—'सचमुच ?'

—'हाँ सचमुच। यहाँ तक कि मेरे तुम्हारे सम्बन्ध में बहुत-सी चर्चाएँ भी शुरू हो गई हैं।'

—'तब तो मैं कल से तुम्हारे साथ मिलना-जुलना छोड़ दूँगी।'

—'नहीं-नहीं, ऐसा मत करना क्योंकि तुम जानती हो कि तुमने मेरी निराश और टूटती हुई आत्मा को नयी जिंदगी दी है।'

—'फिर तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूँ ?'

—'तुम तो घबरा गईं, इतनी-सी बात से ही। हमें संसार को बता देना होगा कि हम-तुम पति-पत्नी नहीं बनना चाहते, एक मित्र के रूप में ही जिंदा रहना चाहते हैं। ऐसे नये मूल्य के लिए तुम्हें त्याग करना पड़ेगा। हो सकता है कि समाज से आदर का त्याग करना पड़े। लोग तुम्हें कुलटा और पापिन कहें।'

—'नहीं बाबा, समाज बड़ा क्रूर है।'

—'यही समाज आगे बदलेगा और मुझे आशा है कि इस नये मूल्य के प्रति आस्था रखेगा।'

—'मुझे तो कोई आशा नहीं है।'

—'मुझे आशा है, इसलिए तुम्हें निराश नहीं होना चाहिए। मैं तो यह तथ्य प्राप्त कर चुका हूँ कि हमेशा कुहरीली सर्दी में काँपती और कफ़न जैसी बर्फ की चादर ओढ़े यह कश्मीर की वादी हर साल मार्च के अन्तिम सप्ताह में बादाम के शगूफे पहने अँगड़ाई लेती है और वेद की लचकीली शाखाओं के रूप में लहराने और नाचने लगती है। अभी तक तुम इसी संशय में गिरफ्तार हो जैसे पुरानापन हमारी जिंदगी पर हावी है और पहरा देता रहता है। लेकिन मैं विश्वास दिलाता हूँ कि शिक्षा ने वे नये मूल्य बो दिये हैं जिनकी फसल उगकर बहुत जल्दी ही लह-लहायेगी। जिसको देखकर हम तुम गायेंगे और नाचेंगे। पुराने बन्धनों से समाज बहुत जल्द ही आज़ाद होने वाला है।'

—'तब तक हम दोनों बूढ़े हो जायेंगे।'

—'तुम इस बात को हँसी में टाल रही हो। क्या तुमने कोई परि-वर्तन नहीं देखा है। आज हम दोनों यहाँ बैठे हुए बातें कर रहे हैं यदि

यही घटना १५ वर्ष पूर्व होती तो इसे दुर्घटना की संज्ञा दी जाती। आफ़िसों में नारी-पुरुष सहयोगी के रूप में अपनी ज़िंदगी के सबसे अधिक साझेदार बन गये हैं। पति-पत्नी उतने निकट नहीं है जितने कि सहकर्मी व्यक्ति।'

—'यह बात तो सही है लेकिन आप जैसे बुद्धिजीवी क्या कर रहे हैं ?'

—'बुद्धिजीवी ने ही यह नई दृष्टि दी है। तुम्हें मालूम है कि अमृता प्रीतम ने सिसकती ज़िंदगी को आज़ाद होने का संदेश दिया। व्यक्तित्व की स्वतंत्रता और उसके नये सम्बन्धों को जन्म दिया है तो एक महिला बुद्धिजीवी ने ही। उसके बिल्कुल समानांतर डी० एच० लारेंस और ज्योपाल सार्त्र ऐसे ही बुद्धिजीवी हैं। भारत में पद्मा सचदेव, नयनतारा सहगल भी ऐसी ही महिलाएँ हैं जो नये सम्बन्धों में आस्था रखती हैं। मित्रता का मूल्य इन्हीं की खोज है। हिन्दी के मोहन राकेश ने तो अपने जीवन में इस नये मूल्य का पालन ही किया। बुद्धिजीवियों ने ही जर्जर समाज को टूटते कगार पर खड़ा कर दिया है।'

—'इधर नैतिक मूल्यों में जो परिवर्तन आ रहा है उससे समाज खोखला हो रहा है लेकिन बुद्धिजीवी इस खोखलेपन को दूर करने और समाज को ठोस आधार देने के लिए क्या कर रहे हैं।'

—'बुद्धिजीवी क्या कर सकता है। वह तो नये मूल्य को जन्म दे रहा है लेकिन राजनीतिक और आर्थिक शोषणों ने समाज को खोखला कर दिया है उस शोषण के प्रति सचेत करना उसका कार्य है। आज की समस्या इससे भी बड़ी है। वह समस्या मनुष्य के आंतरिक पक्ष से जुड़ी हुई है। मनुष्य भटक रहा है—अपनी तलाश में। भीड़ में खोये हुए लोग एक-दूसरे को बाँहों का सहारा नहीं देते क्योंकि सभी गुमनाम और बेचेहरा लोग हैं। उनका न कोई सम्बन्धी है और न मित्र। अन्धी गलियों में भटकना उनकी नियति है।'

—'मेरे साथ एक और कारण है निराशा का। वह यही है कि परिस्थितियाँ लम्बी उदास दोपहरी की तरह फैली हुई हैं। मैं उन्हीं में तप रही हूँ। ससुराल वाले चाहते हैं कि मैं आगे न पढ़ूँ, नौकरी न करूँ लेकिन

मैं विश्वास करती हूँ कि जीवन की स्वायत्तता और अपनी वैयक्तिकता खोकर तो एक अँधेरे तहखाने में कैद हो जाऊँगी। ऐसी ही दशा में एक विद्रोह कसमसाकर जाग उठता है। मेरा वश हो तो दरवाज़ों को तोड़ डालूँ दीवारों को गिरा दूँ और छत को उड़ा दूँ। लेकिन ऐसा मैं नहीं कर पाती और न कर सकती हूँ उसके बदले मेरी आँखों में दर्द छलक आता है जो मेरे छिन्न-भिन्न व्यक्तित्व को ठण्डा कर देता है—बर्फ-सा ठण्डा। मैं इसीलिए आपके पास आती हूँ। लेकिन मुझे अफसोस है कि आपको मेरे कारण बहुत कष्ट उठाना पड़ता है।'

—'कष्ट उठाने की बात क्या है। सबसे बड़ा कष्ट तो इसी बात में है कि तुम औपचारिकता तक उतर आती हो। अभी अभी 'आप' से 'तुम' तक की यात्रा और फिर 'तुम' से 'आप' की वापसी, बड़ी कष्टदायक प्रतीत हुई। मैं तुम्हें यह बताना चाहता हूँ कि हम दोनों एक ही मानसिकता के शिकार हैं। मेरी पत्नी एक बहुत बड़े आदमी की बेटी है। उसे ठाट-बाट और शान-शौकत की जिंदगी अच्छी लगती है। वह 'आप' से 'तुम' न सुनना और न सुनाना ही पसंद करती है। औपचारिकता को वह सभ्य लोगों की पहचान मानती है। बच्चों को भी उसने ऐसा ही बनाया है। घर में मुझे कहीं भी सहज रूप नहीं मिलता। सब चेहरे अभी से अजनबीपन से पुते दिखाई देते हैं। तुम्हारे पास मुझे लगता है जैसे किसी घुटन भरी कोठरी से निकलकर खुले मैदान में खड़ा हो गया हूँ, तुम मेरे हाथ को अपने हाथ में लिये हुई हो। प्रकाश की किरणें मेरे शरीर को सुखद स्पर्श से रोमांचित करती हैं। मैं भूल जाता हूँ कि 'मैं' हूँ। ऐसी स्थिति में मेरा अस्तित्व तुमसे उधार माँगे उजाले में चमकने लगता है।'

—'लेकिन मुझे तब बहुत वेदना होती है जब मैं तुम्हें अपने प्रेम से बाँधने की कोशिश करती हूँ। ऐसी दशा में तुम उदार बने हुए और लड़कियों के साथ एक निष्काम योगी की तरह दिखाई देते हो तो लगता है कि मैं ज़बरदस्ती के प्यार का बन्धन लिए हुए तुम्हारा पीछा कर रही हूँ। उस समय अपनी ही दृष्टि में मुझे महान् अपमान का अहसास होता है।'

—'इस तथ्य को मैं अच्छी तरह समझता हूँ और कितनी बार चाहा है कि मैं तुम्हें बाँहों में भर कर हमेशा के लिए आश्वस्त कर दूँ लेकिन एक

प्रश्न, एक अहसास मुझे ठण्डा कर देता है। वह यह है कि कहीं हम तुम किसी टूटे हुए कगार पर तो नहीं खड़े हैं ?'

वह बेतहाशा हँसने लगी थी और उसकी इस हँसी को सुनकर मैं लज्जित हुआ क्योंकि एक ओर मैं समाज को टूटते कगार पर खड़ा बता चुका था और अब मैं उसी कगार पर खड़ा नज़र आने लगा था। वह हँसते-हँसते रुकी तो कहने लगी—

—'तुम तो बड़े बहादुर निकले। जब तक तुम जैसे बुद्धिजीवी भी विसंगतियों का शिकार बने रहेंगे तब तक समाज क्या खाक बदलेगा।

वह बुद्धिजीवी था। विचारधारा से एक पक्का साम्यवादी। उसके मित्र प्रायः उसे परकीयावादी भी कहा करते। वह इस नये नाम को बड़े गर्व के साथ स्वीकार करता। हमेशा नई-नई मित्रता करना उसका जीवन-क्रम बन गया था। अधिक फारवर्ड किस्म की लड़कियों से दूर रहता क्योंकि वहाँ उसकी दाल नहीं गलती थी। पति के रूप में वह असफल सिद्ध हो चुका था क्योंकि उसके अन्दर भीतरी स्थिरता बिल्कुल नहीं थी। उसकी आदत थी कि मित्रों के बीच किसी पार्टी में बात करते-करते अचानक उठ पड़ता और उस तरफ बढ़ जाता जहाँ नारियों का झुंड खड़ा होता। उसे उनके बालों में शेम्पु की गंध और शरीर से उठती टेल्कम की खुशबू लेने की आदत हो गई थी। प्रेम के विषय में उसकी मान्यता थी कि स्त्री-दर्शन ही प्रेम-दर्शन है। वह फ्री सैक्स का हामी था। इसके लिए अनेक स्त्रियों से प्रेम या प्रेम के लिए अनेक स्त्रियाँ आवश्यक थीं।

लेकिन इधर वह जीवन से उदास और सन्यासी दिखने लगा था। इसका कारण यह था कि वह एक सप्ताह के लिए जब पार्टी की मीटिंग अटेंड करने दिल्ली गया हुआ था तो दिल्ली में मिस कामना जो कामरेड भी थीं, वे मिल गईं। कामरेड ने परकीयाभाव मिस कामना के साथ भी स्थापित करना चाहा। पर वहाँ कामरेड कामना को स्वकीया रूप में कामरेड जोशी अपना चुके थे, अतः हमारा नायक निराश लौटा। घर जब आया तो थका चूर-चूर। पत्नी ने देखा कि पति थका हुआ है अतः बत्ती न जलाकर चुपचाप कमरे से बाहर चली गई। कामरेड ने देखा कि पत्नी बिस्तर पर नहीं है। वे आधे घण्टे तक पड़े-पड़े देखते रहे। उन्हें कुछ संदेह

हुआ और बाहर के कमरे में किवाड़ों की दरारों से झाँककर देखा। वह दृश्य उनके लिए मर्मान्तक लगा। दरवाज़ा पीटा लेकिन दरवाज़ा नहीं खुला। बड़ी देर के बाद पत्नी अपनी साड़ी सँभालती हुई निकली। काम-रेड चीखने लगा। बुद्धिजीवी अपने मित्र से टकराया और मार खाई। पत्नी का उपदेश सुना—"रात के समय क्यों शोर कर रहे हो। तुम्हें सभ्य होना चाहिए। यह शोभा देता है कि ज़रा-सी बात के लिए आसमान उठाये लेते हो। तुम्हारा ही तो सिद्धांत है कि पति-पत्नी आज स्वतन्त्र हैं और सम्बन्धों में भी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। तुम खामोश हो जाओ। मैं अभी-अभी गर्म कॉफी का प्याला लाती हूँ।"

इस घटना के बाद वह मारा-मारा फिरता रहा था। यातना झेलती हुई उसकी पीली आत्मा सड़कों और फुटपाथों पर भटकती रही। उसके चारों तरफ़ सन्नाटा और तनाव है और आज जब उसकी नारी मित्र आँखें बचाकर उसके पास से निकल गई तो लगा जैसे डोर से कटी जिंदगी कँटीले तारों से उलझ गई हो।

• • •

